GEPS-03

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : एक परिचय

Indian Political System : An Introduction

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani

हैलो हल्द्वानी

91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

GEPS- 03

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : एक परिचय

Indian Political System : An Introduction

समाजविज्ञान विद्या शाखा

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक –समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ. लता जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक — इकाई संख्या

डॉ0 सूर्य भान सिंह,असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल.	**1,4,6,7,9**
डॉ. जाकिर हुसैन, सेवानिवृत प्राध्यापक राजनीति विज्ञान, राजकीय महाविद्यालय रानीखेत	**2,3,8**
डॉ. भुवन तिवारी, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग , M.B.P.G. कॉलेज हल्द्वानी, नैनीताल	**5**

आई.एस.बी.एन. ----------- ISBN :
कापीराइट @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष -2024
Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139
Printed at :-----------------------------------
संस्करण:2024, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।
सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है
मुद्रित प्रतियां :

अनुक्रम

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था : एक परिचय **GEPS-03**

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठसंख्या
इकाई 1	भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार	1-12
इकाई 2	भारतीय का राजनीतिक आधुनिकीकरण	13-29
इकाई 3	भारत की राजनीतिक संस्कृति	30-43
इकाई 4	भारत में दलीय राजनीति	44-54
इकाई5	निर्वाचन आयोग	55-69
इकाई6	भारतीय राजनीति में जातिवाद	70-77
इकाई7	भारत में पंथनिरपेक्षता	78-84
इकाई8	राष्ट्रीय एकीकरण के बाधक तत्व और उपाय	85-92
इकाई9	नक्सलवाद	93-111

इकाई 1 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का मूल आधार

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संविधान की प्रस्तावना
1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं
1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान
1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान
1.4.3 सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य
1.4.4 पंथ निरपेक्ष
1.4.5 समाजवादी राज्य -
1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय
1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली
1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन
1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध
1.6 लोक कल्याणकारी राज्य
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना -

इस इकाई 1 में भारतीय संविधान के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा। जिससे भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को समझने में और सुविधा हो सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट करना चाहते हैंकि भारतीय संविधान में विश्व के संविधानों के उन्हीं पक्षों को शामिल किया गया हैं जो हमारे देश की आवश्यकताओं के अनुरूप है। चाहे वह संसदीय शासन हो चाहे संघात्मक शासन हो या एकात्मक शासन हो। ब्रिटेन के संसदीय शासन को अपनाया गया किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेगें कि

1.भारतीय संविधान इतना विस्तृत होने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

2. भारतीय संविधान में संसदीय तत्व क्यों अपनाये के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

3. भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणों का प्रावधान किये गये जाने के कारणों का भी अध्ययन कर सकेंगे।

1.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रत्येक देश का संविधान उसके देश-काल की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जाता है। चूंकि प्रत्येक देश की सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियॉ भिन्न-भिन्न होती हैं, इसलिए संविधान निर्माण के समय उन सभी पक्षों को शामिल किया जाता है। इस भिन्नता के कारण यह संभव हैं कि किसी देश में कोई व्यवस्था सफल हो तो वह अन्य देश में उसी स्वरूप में न सफल हो या उसे उसी रूप में लागू न किया जा सके। यदि हम देखें तो हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय विश्व के प्रचलित संविधानों का अध्ययन किया, और उन संविधानों के महत्वपूर्ण प्रावधानों को अपने देश की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप ढालकर अपनाने पर जोर दिया है। जैसे-हमारे देश में ब्रिटेन के संसदीय शासन का अनुसरण किया गया हैं किन्तु उसके एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया हैं बल्कि संसदीय के साथ संज्ञात्मक शासन को अपनाया गया है। यहॉ यह स्पष्ट करना नितान्त आवश्यक हैं कि संसदीय के साथ एकात्मक शासन न अपनाकर संघात्मक शासन क्यों अपनाया गया है। चूंकि हमारे देश में भौगोलिक, सामाजिक और संस्कृतिक बहुलता पाई जाती है। इसलिए इनकी पहचान को बनाए रखने के लिए संघात्मक शासन की स्थापना को महत्व प्रदान किया गया परन्तु संघात्मक शासन में पृथक

पहचान, पृथकतावाद को बढ़ावा न दे, इसके लिए एकात्मक शासन के लक्षणों का भी समावेश किया गया है, जिससे राष्ट्रीय एकता को खतरा न उत्पन्न हो क्योंकि आजादी के समय हमारा देश विभाजन के दु:खद अनुभव को झेल चुका था।

यहॉ हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि अन्य देशों के संविधान की भांति हमारे देश के संविधान का प्रारम्भ भी प्रस्तावना से हुआ है। प्रस्तावना को प्रारम्भ में इसलिए रखा गया हैं जिससे यह स्पष्ट हो सके कि इस संविधान के निर्माण का उद्देश्य क्या था? साथ ही वैधानिक रूप से संविधान के किसी भाग की वैधानिक व्याख्या को लेकर यदि स्पष्टता नहीं हैं तो प्रस्तावना मार्गदर्शक का कार्य करती है। संविधान की प्रस्तावना के महत्व को देखते हुए सर्वप्रथम प्रस्तावना का अध्ययन करना आवश्यक है:-

> " हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को ,
>
> सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय,
>
> विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता,
>
> प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा
>
> उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता
>
> सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढाने के लिए
>
> दृढ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 (मिति मार्ग शीर्ष शुक्ल सप्तमी, सम्वत् दो हजार छह विक्रमी) को एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

यहॉ यह स्पष्ट करना आवश्यक हैं कि मूल संविधान में 'समाजवादी, पंथनिरपेक्ष और अखण्डता' शब्द नहीं था। इसका भारतीय संविधान में समावेश 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है।

अब हम प्रस्तावना में प्रयोग में लाये गये महत्वपूर्ण शब्दों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगें-

1. हम भारत के लोग-इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संविधान का निर्माण किसी विदेशी सत्ता द्वारा नहीं किया गया है वरन भारतीयों द्वारा किया गया है। प्रभुत्व शक्ति की स्रोत स्वंय जनता हैं और अन्तिम सत्ता का निवास जनता में है।
2. सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न- इसका तात्पर्य परम सत्ता या सर्वोच्च सत्ता से है, जो निश्चित भू-क्षेत्र अर्थात भारत पर लागू होती है। वह परम सत्ता किसी राजे-महाराजे या विदेशी

के पास न होकर स्वंय भारतीय जनता के पास हैंऔर भारतीय शासन अपने आंतरिक प्रशासन के संचालन और परराष्ट्र संबंधों के संचालन में पूरी स्वतंत्रता का उपयोग करेगा। यद्यपि भारत राष्ट्रमंडल का सदस्य है, परन्तु इससे उसके सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. पंथ निरपेक्ष:- यह शब्द मूल संविधान में नहीं था, वरन इसका समावेश संविधान में 42वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया है। इसका तात्पर्य हैंकि- राज्य किसी धर्मविशेष को 'राजधर्म' के रूप में संरक्षण नहीं प्रदान करेगा, वरन वह सभी धर्मो के साथ समान व्यव्हार करेगा और उन्हें समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा।
4. गणराज्य- इसका तात्पर्य हैं कि भारतीय संघ का प्रधान, कोई वंशानुगत राजा या सम्राट न होकर के निर्वाचित राष्ट्रपति होगा। ब्रिटेन ने वंशानुगत राजा होता हैंजबकि अमेरिका में निर्वाचित राष्ट्रपति हैं इसलिए भारत अमेरिका के समान गणराज्य है।
5. न्याय- हमारा संविधान नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय की गारण्टी देता है। न्याय का तात्पर्य हैंकि राज्य का उद्देश्य सर्वजन का कल्याण और सशक्तिकरण हैंन किविशेषलोगों का। सामाजिक न्याय का तात्पर्य हैंकि अब तक हासिये पर रहे वंचित समुदायों को भी समाज की मुख्यधारा में लाने वाले प्रावधान किये जायें तथा उनका क्रियान्वयन भी सुनिश्चित किया जाए। आर्थिक न्याय का तात्पर्य हैंकि प्रत्येक नागरिक को अपनी न्यूनतम आवश्यकता को वस्तुओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने का अवसर प्रदान किये जाएं। राजनीतिक न्याय का तात्पर्य हैंकि: प्रत्येक नागरिक को धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान का भेदभाव किये बिना उसे अपना प्रतिनिधि चुनने और स्वंय को प्रतिनिधि चुने जाने का अधिकार होना चाहिए।
6. एकता और अखण्डता - मूल संविधान में एकता शब्द ही था। परवें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा अखण्डता शब्द का समावेश किया गया। जिसका तात्पर्य यह हैंकि धर्म, भाषा, क्षेत्र, प्रान्त, जाति आदि की विभिन्नता के साथ एकता के आदर्श को अपनाया गया है। इसके साथ अखण्डता शब्द को जोड़कर 'अखण्ड एकता' को साकार करने का प्रयास किया गया है। इसके समर्थन में भारतीय संविधान में तीसरा संवैधानिक संशोधन भी किया गया है।

1.4 भारतीय संविधान की विशेषताएं

भारतीय संविधान की विशेषताए निम्नलिखित हैं -

1.4.1 लोकप्रिय प्रभुसत्ता पर आधारित संविधान

संविधान के द्वारा यह स्पष्ट किया गया है, प्रभुसत्ता अर्थात सर्वोच्च सत्ता का स्रोत जनता है। प्रभुसत्ता का निवास जनता में है। इसको संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट किया गया हैंकि ‘हम भारत के लोग .... ।’

1.4.2 विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान

विश्व में सर्वाधिक विस्तृत संविधान हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। जिसमें 22 भाग, 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियॉं हैं। जबकि अमेरिका के संविधान में 7 अनुच्छेद, कनाडा के संविधान में 4 7 अनुच्छेद है। भारतीय संविधान के इतना विस्तृत होने के कई कारण है। जो निम्नलिखित है:-

अ. हमारे संविधान में संघ के प्रावधानों के साथ - साथ राज्य के शासन से सम्बन्धी त प्रावधानों को भी शामिल किया है। राज्यों का कोई पृथक संविधान नहीं हैं जबकि अमेरिका में संघ और राज्य का पृथक संविधान है।

ब. जातिय , संस्कृतिक, भौगोलिक सामाजिक विविधता भी संविधान के विशाल आकार का कारण बना। क्योंकि इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, आंग्लभारतीय, अल्पसंख्यक आदि के लिए पृथक रूप से प्रावधान किये गये है।

स. नागरिकों मूल अधिकारों का विस्तृत उल्लेख करने के साथ ही साथ नीतिनिदेशक तत्वों और बाद में मूलकर्तव्यों का समावेश किया जाना भी संविधान के विस्तृत होने का आधार प्रदान किया है।

ड. नवजात लोकतन्त्र के सुचारू रूप से संचालन के लिए कुछ महत्वपूर्ण प्रशासनिक एजेन्सियों से सम्बन्धी त प्रावधान भी किये गये हैं। जैसे निर्वाचन आयोग, लोक सेवा आयोग वित्त आयोग, भाषा आयोग, नियन्त्रक, महालेखा परीक्षक महिला आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, अनुसूचित जाति आयोग, अनुसूचित जनजाति आयोग आदि। संघात्मक शासन का प्रावधान करने के कारण केन्द्र-राज्य संबन्धो का विस्तृत उपबन्ध संविधान में किया गया है।

1.4.3 सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य

जैसा कि हम ऊपर प्रस्तावना में स्पष्ट कर चुके हैंकि अन्तिम सत्ता जनता में निहित है । भारत अब किसी के अधीन नहीं है। वह अपने आन्तरिक और वाह्य मामले पूरी तरह से स्वतन्त्र है। संघ का प्रधान कोई वंशानुगत राजा न होकर निर्वाचित राष्ट्रपति हैं न कि ब्रिटेन की तरह सम्राट ।

1.4.4 पंथ निरपेक्ष

भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। यद्यति इस शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया है, किन्तु इससे सम्बन्धी त प्रावधान संविधान के विभिन्न भागों में पहले से विद्यमान हैं जैसे मूल अधिकार में और इसी प्रकार कुछ अन्य भागों में भी। पंथनिरपेक्षता का तात्पर्य हैं कि राज्य का अपना को राजधर्म नहीं है। सभी धर्मो के साथ वह समान व्यवहार करेगा और समान संरक्षण प्रदान करेगा।

1.4.5 समाजवादी राज्य -

मूल संविधान में इस शब्द का प्रावधान नहीं किया था इसका प्रावधान 42 वे संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया हैं। इस शब्द को निश्चित रूप से परिभाषित करना आसान कार्य नहीं है, परन्तु भारतीय सन्दर्भ में इसका तात्पर्य हैं कि राज्य विभिन्न समुदायों के बीच आय की असमानताओं को न्यूनतम करने का प्रयास करेगा।

1.4.6 कठोरता और लचीलेपन का समन्वय

संविधान में संशोधन प्रणाली के आधार पर दो प्रकार के संविधान होते है। 1- कठोर संविधान 2- लचीला संविधान कठोर संविधान वह संविधान, वह संविधान होता हैजिसमें संशोधन, कानून निर्माण की सामान्य प्रक्रिया से नहीं किया जा सकता है। इसके लिए विशेष प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जैसा कि अमेरिका के संविधान में है। अमेरिका के संविधान में संशोधन तभी संभव है जबकि कांग्रेस के दोनों सदन (सीनेट, प्रतिनिध सभा) दो तिहाई बहुमत से संशोधन प्रस्ताव पारित करें साथ ही उसे अमेरिकी संघ के 50 राज्यों में से कम से कम तीन चौथाई राज्य उसका समर्थन करें।

लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके, जैसे ब्रिटेन का संविधान। क्योंकि ब्रिटिश संसद साधारण बहुमत से ही यातायात कर लगा सकती तो वह साधारण बहुमत से ही क्राउन की शक्तियों को कम कर सकती है।

किन्तु भारतीय संविधान न तो अमेरिका के संविधान के समान न तो कठोर हैं और न ही ब्रिटेन के संविधान के समान लचीला है। भारतीय संविधान में संशोधन तीन प्रकार से किया जा सकता हैं-

1. कुछ अनुच्छेदों में साधारण बहुमत से संशोधन किया जा सकता है।

2. संविधान के ज्यादातर अनुच्छेदों में संशोधन दोनों सदनो के अलग-अलग बहुमत से पारित करके साथ ही यह बहुमत उपस्थित सदस्यों का दो तिहाई है।

3. भारतीय संविधान मे कुछ अनुच्छेद, जो संघात्मक शासन प्रणाली से सम्बन्धी त है, उपरोक्त क्रम दो के साथ (दूसरे तरीका) कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के द्वारा स्वीकृति देना भी आवश्यक है।

इस प्रकार से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान कठोरता और लचीलेपन का मिश्रित होने का उदाहरण पेश करता है। भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री **जवाहर लाल नेहरू** ने इसको स्पष्ट करते हुए कहा था कि - 'हम संविधान को इतना ठोस और स्थायी बनाना चाहते है, जितना हम बना सकें। परन्तु सच तो यह है कि संविधान तो स्थायी होते ही नहीं है। इनमे लचीलापन होना चाहिए। यदि आप सब कुछ कठोर और स्थायी बना दें तो आप राष्ट्र के विकास को तथा जीवित और चेतन लोगों के विकास को रोकते हैं। हम संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते कि वह बदलती हुई दशाओं के साथ न चल सके।

1.4.7 संसदीय शासन प्रणाली

हमारे संविधान के द्वारा ब्रिटेन का अनुसरण करते हुए संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह संसदीय प्रणाली न केवल संघ में वरन राज्यों में भी अपनाया गया हैं।

इस प्रणाली की विशेषता -

अ. नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद/नाममात्र की कार्यपालिका संघ में राष्ट्रप्रति और राज्य में राज्यपाल होता है जबकि वास्तविक कार्यपालिका संघ और राज्य दोनों में मंत्रिपरिषद होती है।

ब. राष्ट्रपति (संघ मे) राज्यपाल (राज्य में) केवल संवैधानिक प्रधान होते है।

स. मंत्रिपरिषद(संघ में) - लोक सभा के बहुमत के समर्थन पर ही अपने अस्तित्व के लिए निर्भर करती है। राज्य में मंत्रिपरिषद अपने अस्तित्व के लिए विधानसभा के बहुमत के समर्थन पर निर्भर करती है। लोकसभा, विधान सभा - दोनों निम्न सदन हैं, जनप्रतिनिधि सदन है। इनका निर्वाचन जनता प्रत्यक्ष रूप से करती है।

ड. कार्यपालिका और व्यवस्थापिक में घनिष्ठ सम्बन्ध होता हैं क्योंकि कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों में से ही किया जाता है।

1.4.8 एकात्मक लक्षणों के साथ संघात्मक शासन

यद्यपि भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। किन्तु उसके साथ वहां के एकात्मक शासन को नहीं अपनाया गया है। क्योंकि भारत में सामाजिक, संस्कृतिक, भौगोलिक बहुलता पाई जाती है। इस लिए इनकी अपनी संस्कृतिक पहचान और सामाजिक अस्मिता की रक्षा के लिए संघात्मक शासन प्रणाली अपनाया गया है। लेकिन संघात्मक शासन के साथ राष्ट्र की एकता और अखण्डता की रक्षा के लिए संकटकालीन स्थितियों से निपटने के लिए एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है। इस क्रम में हम पहले भारतीय संविधान में संघात्मक शासन के लक्षणों को जानने का प्रयास करेंगे। जो निम्न लिखित है:-

1. लिखित निर्मित और कठोर संविधान

2. केन्द(संघ) और राज्य की शक्तियों का विभाजन (संविधान द्वारा)

3. स्वतन्त्र, निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायालय जो संविधान के रक्षक के रुप में कार्य करेगी। संविधान के विधिक पक्ष में कही अस्पष्टता होगी तो उसकी व्याख्या करेगी। साथ ही साथ नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगी।

किन्तु यहॉ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक हैं कि भारतीय संघ हेतु, कनाडा के संघ का अनुसरण करते हुए संघीय सरकार (केन्द्र सरकार) को अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। भारतीय संविधान के द्वारा यद्यापि संघात्मक शासन तो अपनाया गया है किन्तु उसके साथ मजबूत केन्द्र की स्थापना हेतु, निम्नलिखित एकात्मक तत्वों का भी समावेश किया गया है-

1- केन्द्र और राज्य में शक्ति विभाजन केन्द्र के पक्ष में हैं क्योंकि तीन सूची - संघ सूची, राज्य सूची, समवर्ती सूची में। संघ सूची में संघ सरकार को, राज्य सूची पर राज्य सरकार को और समवर्ती सूची पर संघ और राज्य दोनों को कानून बनाने का अधिकार होता है किन्तु दोनों के कानूनों में विवाद होने पर संघीय संसद द्वारा निर्मित कानून ही मान्य होता है। इन तीन सूचियों के अतिरिक्त जो अवशिष्ट विषय हो अर्थात जिनका उल्लेख इन सूचियों में न हो उन पर कानून बनाने का अधिकार भी केन्द्र सरकार का होता है।

इसके अतिरिक्त राज्य सूची के विषयों पर भी संघीय संसद को कुछ विशेष परिस्थितियों में राज्य सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जाता हैं जैसे- संकट की घोषणा होने पर दो या दो से अधिक राज्यों द्वारा प्रस्ताव द्वारा निवेदन करने पर, राज्य सभा द्वारा पारित संकल्प के आधार पर।

एकात्मक लक्षण- इसके अतिरिक्त इकहरी नागरिकता- संघात्मक शासन में दोहरी नागरिकता होती हैं। एक तो उस राज्य की जिसमें वह निवास करता है ,दूसरी संघ की। जैसा कि अमेरिका में है। जबकि भारत में इकहरी नागरिकता है अर्थात कोई व्यक्ति केवल भारत का नागरिक होता है।

एकीकृत न्यायपालिका- एक संविधान, अखिल भारतीय सेवाए, आपातकालीन उपबन्ध, राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति आदि। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय संविधान संघात्मक शासन हैं जिसमें संकटकालीन स्थितियों से निपटने हेतु कुछ एकात्मक लक्षण भी पाए जाते है।

1.5 विभिन्न स्रोतों से लिए गए उपबंध

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर चुके हैं कि हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दुनियां में तत्कालीन समय में प्रचलित कई संविधानों का अध्ययन किया और उसमें से महत्वपूर्ण पक्षों को , जो हमारे देश में उपयोगी हो सकते थे उन्हें अपने देश-काल की परिस्थितियों के अनुरुप ढालकर संविधान में उपबन्धित किया।

वे स्रोत निम्नलिखित है, जिनका प्रभाव भारतीय संविधान पर पड़ा-

स्रोत	विषय
भारतीय शासन अधिनियम 1935	तीनों सूचियॉ, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियॉ
ब्रिटिश संविधान	संसदीय शासन
अमरीकी संविधान	प्रस्तावना, मौलिक अधिकार, सर्वोच्च न्यायालय, उपराष्ट्रपति का पद, संविधान में संशोधन प्रक्रिया
आयरलैण्ड का संविधान	नीति निदेशक तत्व, राष्ट्रपति के निर्वाचन में निर्वाचक मण्डल
कनाडा का संविधान	संघात्मक शासन , अवशिष्ट शक्तियां केंद्र के पास होना
आस्ट्रेलिया का संविधान	समवर्ती सूची
दक्षिण अफ्रीका का संविधान	संविधान में संशोधन की प्रक्रिया
पूर्व सोवियत संघ	मूल कर्तव्य

1.6 लोक कल्याणकारी राज्य -

लंबे संघर्ष के पश्चात देश को आजादी मिली थी। जिसमें संसदीय लोकतन्त्र को लागू किया गया है। संसदीय लोकतन्त्र में अन्तिम सत्ता जनता में निहित होती है। इसलिए भारतीय संविधान के द्वारा ही भारत को कल्याणकारी राज्य के रुप में स्थापित करने का प्रावधान भारतीय संविधान के विभिन्न भागों में किए गए। विशेषरुप से भाग 4 के नीति निदेशक तत्व में , मौलिक अधिकारों में, संविधान के अनुच्छेद 9 के द्वारा अस्पृश्यता के समाप्ति की घोषणा के साथ इसे दण्डनीय अपराध माना गया है। प्रस्तावना में सामाजिक, आर्थिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य घोषित किया गया। मौलिक अधिकार के अध्याय में किसी भी नागरिक के साथ धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया। साथ ही अब तक समाज की मुख्यधारा से कटे हुए वंचित समुदायों के लिए विशेष प्रावधान किए गए, जिससे वे भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर राष्ट्र के विकास में अपना अमूल्य योगदान दे सकें।

अभ्यास प्रश्न

1.भारत में ब्रिटेन के संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया गया है। सत्य/असत्य

2 संसदीय शासन प्रणाली की विशेषता नाममात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद। सत्य/असत्य

3.लचीला संविधान वह जिसमें सामान्य कानून निर्माण की प्रक्रिया से संशोधन किया जा सके। सत्य/असत्य

4. भारतीय संविधान के द्वारा भारत को एक पंथ निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया हैं .सत्य/असत्य

5.पंथ निरपेक्ष शब्द का समावेश संविधान में 42वें संशोधन 1976 के द्वारा किया हैं। सत्य/असत्य

1.7 सारांश

इकाई 1 के अध्ययन के के बाद आप को यह जानने में सहायक हुआ कि भारतीय संविधान का स्वरूप क्या हैं। जिसमें जिसमे विविध पक्षों को जानने के साथ ही यह भी जानने का अवसर प्राप्त हुआ कि किन कारणों से यह संविधान इतना विस्तृत हुआ हैं क्योंकि हमारा नवजात लोकतंत्र की रक्षा और इसके विकास के लिए यह नितांत आवश्यक था कि संभावित सभी विषयों का स्पष्ट रूप से समावेश कर दिया जाए। जैसे मूल अधिकार और नीतिनिदेशक तत्वों को मिलाकर संविधान एक बड़ा भाग हो जाता हैं इसी प्रकार से अनुसूचित जातियों और जनजातियों से सम्बंधित उपबंध संघात्मक शासन अपनाने के कारण केंद्र –राज्य सम्बन्ध और संविधान के संरक्षण, उसकी व्याख्या

और मौलिक अधिकारों के रक्षक के रूप में स्वतंत्र निष्पक्ष और सर्वोच्च न्यायलय की स्थापना का प्रावधान किया गया हैं जिसकी वजह से संविधान विस्तृत हुआ है इसके साथ–साथ विभिन्न संवैधानिक आयोगों की स्थापना जैसे निर्वाचन आयोग ,अल्पसंख्यक आयोग ,अनुसूचित जाति आयोग ,अनुसूचित जनजाति आयोग ,राजभाषा आयोग आदि कारणों से संविधान विस्तृत हुआ। इसके साथ ही साथ हमने इस तथ्य का भी अध्ययन किया की संविधान निर्माण में संविधान निर्माता किन देशों में प्रचलित किस पक्ष को अपने देश की आवश्कताओं के अनुरूप पाए। जिस कारण से उन्होंने भारतीय संविधान में शामिल किया हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात हमें संसदीय और अध्यक्षीय शासन के सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त हुई।

1.8 शब्दावली:-

लोक प्रभुसत्ता:- जहाँ सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित हो वहाँ लोक प्रभुसत्ता होती है।

धर्म निरपेक्षता:- राज्य का कोई धर्म न होना राज्य के द्वारा सभी धर्मो के प्रति समभाव का होना।

समाजवादी राज्य (भारतीय संन्दर्भ में):- जहाँ राज्य के द्वारा आर्थिक असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाए।

संघीय व्यवस्था:- केन्द्र और राज्य दोनों संविधान के द्वारा शक्ति विभाजन। अपने -2 क्षेत्र में दोनों संविधान की सीमा में स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करें।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. सत्य 5. सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारतीय संविधान की विशेषताओं की विवेचना कीजिये ?

2.आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं कि भारतीय संविधान एकात्मक लक्षणों वाले संघात्मक शासन की स्थापना करता है?

इकाई-2 : भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

2 .1 प्रस्तावना

2 .2 उद्देश्य

2 .3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

2 .3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

2 .3.2 राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

2 .3.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

2 .4 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण

2 .4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

2 .4.1.1 नौकरशाही

2 .4.1.2 पंचायती राज

2 .4.1.3 दलीय व्यवस्था/**2** .4.1.4 दबाव गुट

2 .5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण , अवधारणा के संदर्भ में

2 .6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

2 .7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

2 .8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

2 .9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

2 .10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

2 .11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

2 .12 सारांश

2 .13 शब्दावली

2 .14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2 .15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2 .16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2 .17 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण को समझने से पूर्व हमें राजनीति आधुनिकीकरण को उसके सामान्य अर्थ में समझना जरूरी है। रॉबर्ट एवर्ट के मतानुसार ''आधुनिकीकरण एक प्रक्रिया हैंजो संसाधनों के तार्किक उपयोग पर आधारित हैं और जिसका लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना है।'' इस अवधारणा को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और संस्कृतिक पहलुओ पर लागू किया जाता है। जब इसे राजनीतिक संदर्भ में लिया जायेगा तो यह 'राजनीतिक आधुनिकीकरण' कहलायेगा परन्तु इसे आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और संस्कृतिक पहलुओ से अलग नहीं किया जा सकता।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप-

- राजनीतिक आधुनिकीकरण की उसके सामान्य अर्थो और राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का उदय के कारणों को जान पायेंगे।
- आधुनिकीकरण के प्रभावों और परिवर्तनाशीलताओं को समझाने का प्रयास किया गया है।
- आधुनिकीकरण और विकास के सम्बन्धों को भी समझाया गया है। यह बताने का प्रयास किया गया है कि पारस्परिक विघटन के बाद यद्यपि आधुनिकीकरण होता हैं परन्तु वह बिखर भी सकता है।
- आधुनिकीकरण की दुविधाओं पर विस्तार से चर्चा की गयी हैं और अंत में यह बताने का प्रयास किया गया है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण का लक्ष्य पवित्र है, यह प्रक्रिया अपरिहार्य है।

2.3 राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा का विकास

अब सवाल पैदा होता है कि राजनीतिक आधुनिकीकरण की विचारधारा क्यों और कैसे अस्तित्व में आयी? एक लम्बे समय तक साम्राज्यवादी देशों ने संसार के अनेक देशो को अपना उपनिवेश बनाये रखा। वह उपनिवेशों का आर्थिक, सामाजिक और संस्कृतिक शोषण करते रहे। राजनीतिक तौर पर उपनिवेश गुलाम बन गये। लेकिन दूसरे विश्व युद्ध के बाद उपनिवेशों में राष्ट्रवाद की लहर दौड़ गयी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष आरम्भ हो गया हैं और अंततः अनेक एशियाई और अफ्रीकी देश आजाद हो गये। इस तरह नये समप्रभुता सम्पन्न राज्य अस्तित्व में आ गये।

अब यहां राजनीति शास्त्रियों के लिए यह अनिवार्य हो गया कि वह इन राज्यों के व्यवहार और उनकी समस्याओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करें इसके लिए उन्होंने व्यवस्था पद्धति को अपनाया जिसका प्रयोग पश्चिम जगत में निरंतर जारी था। उनका मानना था कि गैर पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियों का अध्ययन पश्चिमि राजनीतिक प्रक्रियाओं की सहायता से किया जाना सम्भव था। उन पर पहले से पश्चिमि जगत की संस्थाओं का प्रभाव था। इस तरह जैम्स कोलमैन ने नाइजीरिया का, लूसियन पाई ने वर्मा का तथा अनेक ब्रिटिश और अमरीकी राजनीति शास्त्रियों ने भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका का अध्ययन किया। इन देशो के आंकड़े एकत्रित किये गये और उनकी सहायता से नवोदित राज्यों के व्यवहार का पता लगाया गया। इन आकड़ो के आधार पर एक सामान्य वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया जाना आवश्यक था इसके लिए डेनियल लर्नर, टेलकोट पारसंस, लूसियन पाई, डेविड एफटर, सेमुअल हटिंगटन, रिगस इत्यादि राजनीति शास्त्री सामने आये और अपनी अवधारणांए सामने रखी। लूसियन पाई ने राजनीतिक विकास का संस्कृतिक आयाम में डेविट एप्टर ने राजनीतिक आधुनिकीकरण के संदर्भ में, रिग्स ने द्वंद्वात्मक योजना के संदर्भ में और हटिंगटन ने सामाजिक द्वन्द के संदर्भ में सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

2 .3.1 राजनीतिक आधुनिकीकरण के उद्देश्य

सबसे महत्वपूर्ण सवाल यह है कि विकासशील देशों के लिए आधुनिकीकरण का महत्व क्या है? क्यों पुराना समाज इन तमाम दुविधाओं से गुजरता है? यहॉ हमें यह स्वीकार करना हैंकि आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया हैंजिसे रोका नहीं जा सकता। यह संसार छोटा हो गया है। यातायात और संचार व्यवस्था आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को तेज करती है। कोई समाज इसके प्रभावों से अछूता नहीं रह सकता। गति धीमी या तीव्र हो सकती है। लेकिन पूरी प्रक्रिया की एक उपयोगिता और एक लक्ष्य होता है। आधुनिकीकरण से अनेक राजनीतिक समस्याओं का विश्लेशण किया जा सकता है। आधुनिकीकरण समाज का लक्ष्य निर्धारित करता है और यह भी बताता हैं कि इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? यह समाज को एक स्पष्ट दिशा देता हैं और आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों को नियंत्रित और संतुलित करता है। परिवर्तन आवश्यगामी है। यह परिवर्तनों की सीमा निश्चित करता है।

आधुनिकीकरण भैागोलिक सीमाओं से परे है। यह कहीं भी आ सकता है । आधुनिक समाज के कुछ निश्चित लक्ष्य होते है। आधुनिकीकरण उन लक्ष्यों को पाने में मदद करता हैं।

कुल मिलाकर राजनीतिक आधुनिकीकरण एक सतत् प्रक्रिया है। यह प्रभावकारी हैं और प्रत्येक राज्य और समाज को प्रभावित करती है। इसकी गति को धीमा किया जा सकता है, रोका नहीं जा सकता। नवीनतम उदाहरण यह हैं कि अभी तक कोई सोच नहीं सकता था कि अरब देशों में लोकतंत्र की हवा चलेगी। लेकिन जनवरी 2011 को क्रान्तिकारियों ने तुनेशिया में बेन अली के 23

वर्ष पुराने एकाधिकारी तंत्र को उखाड फेंक कर यह आशा जगाई है कि अरब देशों में भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो चली हैं। मिस्त्र में राष्ट्रपति होस्नी मुबारक के विरूद्ध जब क्रान्ति सफल हुई तब होस्नी मुबारक को जाना पड़ा।

2 .3.राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रभाव

राजनीतिक आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है: (1) यह समाज में परंपरागत संरचनाओं की भूमिकाओं को कमजोर करता है। (2) सत्ता में परिवर्तन लाता है। (3) परम्परागत परिवारिय और जातिय सत्तांए एक प्रथम धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित होती है। (4) पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्य स्वीकार किये जाते है। (5) सरकार के अंग स्पष्ट विभिन्नताओं के साथ सामने आते हैं। (6) जातियों और उपजातियों का राजनीतिक प्रक्रियाओं में मिलकर महत्व कम हो जाता है।

1.5 राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणा को परिभाषित करना बहुत कठिन है लेकिन यह तय हैं कि दोनों का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध हैं और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। अगर आधुनिकीकरण का लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना हैं तो हमको पहले आधुनिक समाज को समझना होगा। पाश्चात्य अर्थ में आधुनिक समाज का अर्थ हैः नगरीयकरण, साक्षरता, सामाजिक गतिशीलता तथा आधुनिक जीवन के लिये यांत्रिकी का प्रयोग। इस तरह परम्परागत समाज का बिखरना और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण का पनपना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रराज्य को राजनीतिक सत्ता की अन्तिम इकाई मानना, आधुनिक समाज की पहचान है। औद्योगिक क्रान्ति ने वास्तव में आधुनिकीकरण की नींव डाली है और यह तय हैं कि आधुनिकीकरण की हवा को रोकना अब कठिन है। हंटिगटन के अनुसार आधुनिकीकरण एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो मानवीय विचार और क्रियाओं के हर क्षेत्र को प्रभावित करती है। उसकी दृष्टि में नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण आधुनिकीकरण आधुनिक समाज की प्रमुख विशेषताएं हैं। आधुनिकीकरण मूल्यों, व्यवहारों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन लाता है।

विकासशील देशों में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ-साथ चलता हैं। गतिशीलता की ऐसी प्रक्रिया एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका में स्पष्ट नजर आती है। यहॉ औद्योगिककरण और साक्षरता के कारण नगरीयकरण की प्रक्रिया जारी है। धीरे-धीरे राष्ट्रीय पैदावार बढ रही हैं और प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई हैं। लेकिन इन क्षेत्रों के देशों में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया धीमी हैं क्योंकि यहॉ राजनीतिक और आर्थिक स्थायित्व की कमी हैं और वृहत संचार व्यवस्था के अभाव में जागरूकता कमजोर है। लोकतांत्रिक विचारों की ओर आकर्षण कम है।

जातिय संघर्षो और गृह युद्धों ने राष्ट्रीय एकीकरण को कमजोर किया है। यह तथ्य राजनीतिक विकास में बाधा है। दूसरे यहॉ राजनीतिक दलों का विकास नहीं हो पाया हैं और नौकरशाही इतनी अक्षम हैं कि मांगो की पूर्ति नहीं कर सकती। (भारत एक अपवाद है) यहॉ यह स्वीकार करना होगा कि आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व में घनिष्ट सम्बन्ध होता है। लेकिन अक्सर ऐसा भी होता हैं कि आर्थिक विकास की गति धीमी हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व अधिक हो (भारत) या फिर आर्थिक विकास की गति तेज हो लेकिन राजनीतिक स्थायित्व कम (अर्जेनटीना) इसलिए आर्थिक विकास की गति बनी रहने के लिये राजनीतिक स्थायित्व एक अनिवार्य शर्त हैं(चीन यद्यपि यहॉ लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं है) कुल मिलाकर आधुनिकीकरण के लिए आर्थिक विकास, राजनीतिक स्थायित्व, धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण, उदारवादी जनतंत्रीय सोच, एकीकरण की भावना अनिवार्य है। आधुनिकीकरण अवश्यगामी है, पुराने समाजों को इसके लिए तैयार रहना चाहिए।

1.6 भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

इस इकाई का उद्देश्य आधुनिकीकरण के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की विशेषताओं, उसके मूल्यांकन, विकास से उसके सम्बन्ध, प्रतिमानों के सम्बन्ध में विश्लेषण , परिवर्तनशीलता से उसका सम्बन्ध, गतिशीलता और बाधाओं का उस पर प्रभाव का अध्ययन करना है।

2 .4.1 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की विशेषताएं

संवैधानिक व्यवस्था के अतिरिक्त ऐसी अन्य विशेषताएं हैं जिन्होनें भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का चरित्र निर्मित किया जाता है। इनमें प्रमुख हैं नौकरशाही की व्यवस्था, स्थानीय स्वशासन के अंतर्गत पंचायती राज्य की व्यवस्था, दलीय व्यवस्था और दबाब गुटों का अस्तित्व।

2 .4.1.1 नौकरशाही

नौकरशाही देश के प्रशासन में एक केन्द्रीय भूमिका अदा करती है। विशेषता यह हैं कि जहां प्रशासन की नीति का निर्धारण मंत्रियों द्वारा होता हैं वहां इन नीतियों का क्रियान्वयन नौकरशाही या असैनिक सेवा वर्ग द्वारा होता है। नौकरशाही संगठन की संरचना संविधान के अनुसार है। तीन प्रकार की असैनिक सेवायें है। केन्द्रीय, अखिल भारतीय और प्रादेशिक सेवायें । असैनिक सेवा वर्ग को संवैधानिक सुरक्षा प्राप्त है।

असैनिक सेवा वर्ग अपनी क्रियान्वयन, वित्तीय और न्यायिक शक्तियों के कारण बहुत शक्तिशाली संस्था मानी जाती है। लेकिन जहां भारतीय नौकरशाही ने राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को सुगम बनाया हैं वहां इसके मार्ग में बाधाएं भी उत्पन्न की हैं। अप्रचलित प्रशासकीय व्यवस्था का निर्माण, अप्रचलिक कार्य पद्धति, भ्रष्टाचार और पक्षपात, पारस्परिक संघर्ष, राजनीतिक हस्तक्षेप

इनमें प्रमुख बाधाएं हैं। परिणाम स्वरूप राजनीतिक प्रशासकीय द्वन्द जातिवाद, साम्प्रदायिकतावाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, इत्यादि ऐसी बीमारियां हैं जिन्होंने नौकरशाही को राजनीतिक व्यवस्था के लिए अभिशाप बना दिया है।

2 .4.1.2 पंचायती राज

राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों ने संवैधानिक आधार पर देश में पंचायती राज्य संस्थाओं के स्पष्ट निर्देश दिये है। यह व्यवस्था स्थानीय शासन का सर्वोत्म उदाहरण हैं। संविधान का अनुच्छेद 40 व्यवस्था देता हैं कि ''राज्य ग्रामीण पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठायेगा और उनको ऐसी शक्तियां प्रदान करेगा जो स्वशासन के कार्य को सुलभ बना सके''।

बलवन्त कमेटी की सिफारिशों के अनुसार व्यवस्था ऐसी होनी थी जो निचले स्तर तक शक्तियों और कार्यों का विकेन्द्रीकरण कर सके। एक ऐसे संगठन की स्थापना करनी थी जो विकास के सारे कार्यो को पूरा करने की क्षमता रखता हो, और सरकार का काम निदेशन देना, निरीक्षण करना, योजना तैयार करना हो और वित्त व्यवस्था करना हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए त्रि-स्तरी ग्रामीण स्थानीय प्रणाली को लागू किया गया - अर्थात ग्राम सभा, पंचायत समिति और जिला परिषद। इन तीनों संरचनाओं में ताल-मेल पैदा किया गया, इनका निर्माण निर्वाचन पद्धति से कराया गया, इनका एक विशेष क्षेत्राधिकार निश्चित किय गया और ग्रामीण स्तर पर प्रत्येक वयस्क व्यक्ति की भागीदारी सुनिश्चित की गयी। पंचायती राज्य की एक और विशेषता यह हैं कि इसमें महिलाओं की भागीदरी आरक्षण के माध्यम से सुनिश्चित की गयी।

पंचायती राज्य ने भारत की राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति दी। यह इस बात से स्पष्ट हैं कि आज देश के लगभग सभी राज्यों में पंचायती राज्य जमीनी स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत कर रहा हैं। विकेन्द्रीकरण ने सहभागिता को बढावा दिया है, ग्रामीण जीवन सुधारा हैंऔर लोंगों में अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूकता आयी है। पंचायती राज्य ने आधुनिकीकरण में कुछ बाधांए भी उत्पन्न की है। जातिवाद को बढावा मिला है, सामाजिक द्वन्द तेज हुआ है, हिंसा हैं और निचले स्तर पर भी भ्रष्टाचार का बोल-बाला है। काफी हद तक यह व्यवस्था धन और बाहुबल पर आधारित है। महिलाओं के नाम पर पुरूषों का वर्चस्व है।

2 .4.1.3 दलीय व्यवस्था

किसी भी लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था का होना अनिवार्य है। विशेष रूप से संसदीय प्रणाली की तो यह रक्त धमिनियां है। यह स्वीकार किया जाता हैं कि दल राजनीतिक आधुनिकीकरण में एक अहम भूमिका अदा करते लेकिन शर्त यह हैं कि इनकी भूमिका सकारात्मक हो। ब्रिटेन और अमेरिका की दलीय व्यवस्था आदर्श मानी जा सकती हैं और यद्यपि

भारतीय दलीय परम्परा ब्रिटेन की देन हैं परन्तु यह उसके आदर्शो का अनुसरण करने में असफल रही हैं। कारण अनेक है:-

पहला कारण दलों की अंतहीन बढोत्तरी है। ऐसी बढोतरी की मिसाल संसार में कही भी देखने को नहीं मिलती। इस स्थिति ने लोंगों को दुविधा में डाल दिया है। लगभग 100 दल अस्तित्व में हैं जिनमें केवल एक दर्जन का महत्व हैं। 1979 में जनता पार्टी के टूटने के बाद यह स्थिति और गंभीर हुई है। इस स्थिति ने राजनीतिक व्यवस्था पर अनुचित दबाव डाला है। इसमें कांग्रेस (आई0) कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) और भारतीय जनता पार्टी ही मुख्य हैं। चुनाव आयोग के मुख्य चुनाव आयुक्त कुरैशी ने ठीक कहा हैं कि अधिकांश दल पैसा कमाने और छोटे नेताओं की महत्वकांक्षा के कारण अस्तित्व में आते है।

दूसरे क्षेत्रीय दलों की भरमार ने भी राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डाला है। इन दलों का कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण नहीं होता और न ही कोई राजनीतिक विचारधारा या आदर्श। यह दिशाहीन, विचारविहीन दल हैं। शक्ति के भूखों का इन पर नियंत्रण हैं जो क्षेत्रवाद, जातिवाद और साम्प्रदायिक भावनाओं को भडकाकर अपना लक्ष्य साधते हैं। वे विशिष्ट भाषायी, धार्मिक, क्षेत्रीय, जातिय और संस्कृतिक समूहों के हितों की रक्षा करते है। उनका प्रभाव एक क्षेत्र तक सीमित रहता है। केन्द्रीय सत्ता हथियाना इनका लक्ष्य नहीं होता परन्तु यह केन्द्रीय सत्ता का साम्य बिगाडने की क्षमता रखते है। यह साम्प्रदायिक भी हैं और अलगाववादी भी । यह दल भारत के राजनीतिक आधुनिकीकरण की सबसे बड़ी बाधा हैं क्योंकि इन्होंने सामाजिक संघर्ष और राजनीतिक द्वन्द को पैदा किय है। इन्होने लोंगों की सोच को संकीर्ण किया है।

तीसरे भारत की पूरी दलीय व्यवस्था जातिवादी और साम्प्रदायिक शक्तियों से नियंत्रित है। वोट बैक की राजनीति, लोकतंत्र को आघात पहुचाया है।

चौथा इन राजनीतिक दलों पर व्यक्तियों का नियंत्रण है। यह एक आदर्श या विचारधारा से नहीं चलती। इन पर व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं, इच्छाओं इरादों और विचारों का प्रभाव है। कम्यूनिस्ट पार्टी को छोडकर किसी दल की कोई स्पष्ट विचारधारा नहीं है। प्रत्येक दल गांधीवाद, लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रति वचनबद्ध हैं जबकि यह झूठ है। नतीजा यह हैं कि लोंगों में विचारात्मक असामंजस्य की स्थिति बनी रहती है।

दल बदल एक और एक बड़ी बीमारी है। इस ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का विनाश कर दिया है। यह स्वस्थ राजनीतिक व्यवस्था की पहचान नहीं है। दलीय वफादारी में कमी, दलीय व्यवस्था को नष्ट करती है। 52वें संशोधन, 1985 से पूर्व यह स्थिति बड़ी भयावाह थी।

पांचवे, 1947 से 1977 तक भारत में एक दल का वर्चस्व रहा। इसने एकदलीय शासन व्यवस्था का रूप तैयार किया। इससे एकाधिकार वाद की प्रवृति पनपी और राजनीतिज्ञों को मनमानी करने का मौका मिला। लालफीताशाही और भ्रष्टाचार का बोल-बाला हुआ। यह स्थिति न केवल केन्द्र में बल्कि बिहार, बंगाल और गुजरात में देखने को मिली।

अंत में यह कहा जा सकता हैं कि सत्ता के विरोधी दलों ने शासन का सकारात्मक विरोध नहीं किया। विरोधी दल विघटित और भटके हुए रहे। इससे न जन चेतना में कोई वृद्धि हुई और न ही शासन में कोई डर बैठा।

कुल मिलाकर राजनीतिक दलों की भूमिका, उनका आचरण, उनका स्वरूप, उनका चरित्र और उनकी कार्यविधि राजनीतिक आधुनिकीकरण के विरूद्ध रही है।

2 .4.1.4 दबाव गुट

दबाव गुट ऐसे संघ हैं जिनकी उत्पत्ति अपने सदस्यों के हितों की पूर्ति करने के लिए हुई हैंऔर इन हितों की पूर्ति सरकार पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दबाव डालकर करते है। यह राजनीतिज्ञ दलों से अलहदा है। यह चुनाव में भाग नहीं लेते है। सत्ता प्राप्त करना इनका लक्ष्य नहीं होता। परन्तु यह राजनीतिक व्यवस्था पर दबाव डालने में अहम भूमिका अदा करते है।

भारत में दबाव गुटों का विकास धीमा रहा है। स्वतंत्रता के बाद इनका विकास अधिक हुआ है। यह ऐसे समूह हैं जिनकी राजनीतिक दलों के प्रति वफादारियां बदलती रहती है। यह अपने सदस्यों के प्रति वफादार होते हैं और इस तरह परम्परावादी और आधुनिक दोनों तत्वों का समावेश होता है। वे आधुनिक तकनीको का प्रयोग करते हैं और राजनीतिक दलों की नीतियों को वित्तीय सहायता प्रदान करके प्रभावित करते है। यह दल देश में अराजकता, हिंसा और अव्यवस्था की स्थिति भी पैदा करते है। इस तरह वे हितों की पूर्ति के लिए परिस्थितियां पैदा करते है।

इन दबाव गुटों में वाणिज्य समूह, मजदूर संघ कृषक समूह, धार्मिक, जातिय , जनजातिय और छात्र संगठक विशेष है।

सच तो यह हैं कि भारत मे दबावों समूहों की भूमिका बहुत सकारात्मक नहीं है। गुर्जर आंदोलन इसका उदाहरण है। आधुनिकीकरण की दृष्टि से इनकी भूमिका विवादास्पद है।

2 .5 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण, अवधारणा के संदर्भ में

हमें यहां यह स्वीकार करना चाहिए कि क्योंकि अभी भारत एक विकासशील देश है। इसलिए यह राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है, इसका अभी आधुनिकीकरण नहीं हुआ हैं

और न ही इसकी कोई राजनीतिक पद्धति पूर्ण रूप से विकसित हुई है। यहां हम राजनीतिक आधुनिकीकरण की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्यन का प्रयास करेंगे।

2.6 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण का विकास

पहले विस्तार से लिखा जा चुका हैं कि उपनिवेशवाद के अंत के बाद भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया आरंभ हुई। यद्यपि 1858 से भारत इस अवधारणा की ओर अग्रसर होने लगा था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वतंत्रता मिलने के अवसर पैदा होने लगे थे जैसा 1935 के एक्ट में भी स्पष्ट था। भारतीयों में शासन में भागीदार की इच्छा जाग्रत होने लगी थी जो लूसियन पाई के अनुसार विकास और संस्कृति की अनिवार्य शर्त थी। स्वशासन , स्वाराज्य और स्वतंत्रता की मांग इसके उदाहरण थे। इसके साथ ही जैसा कि ऑरगेन्स्की का मानना हैं भारत में राजनीतिक एकीकरण, औद्योगीकरण , जनकल्याण और संसधनों की बहुलता के भी चिन्ह अंकित होने लगे थे। यह आर्थिक विकास के लिए जरूरी था। भारत में एक संवैधानिक व्यवस्था के तहत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से आर्थिक गतिशीलता सुनिश्चित हो चली थी।

राजनीतिक दृष्टि से आजादी के बाद भारत ने लोकतांत्रिक व्यवस्था का रास्ता चुना । पारम्परिक व्यवस्था से निकलकर लोकतंत्र के माध्यम से भारत विकसित होना चाहता था। संविधान की प्रस्तावना इसका प्रतीक है।

कुल मिलाकर जैसी आधुनिकीकरण की परिभाषा है, स्वतंत्रता के बाद विशेषरूप से भारत आधुनिक समाज की स्थापना के लिए संसाधनों का तार्किक सदुपयोग करने को तैयार था। जवाहरलाल नेहरू का संसाधनो का सदुपयोगों पर गहरा जोर था। भारी औद्यौगीकरण की संरचना का खाका उन्होंने भावी भारतीय समाज के विकास के लिए तैयार किया था।

आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था का प्रतिनिधित्व राजनीतिक लोकतंत्र करता हैं या सर्वाधिकारी। भारत ने पहली व्यवस्था को अपनाया हैं जबकि चीन और सोवियत संघ ने दूसरा रास्ता अपनाया है।

जैसा कि लिखा जा चुका हैं आधुनिकीकरण के तीन प्रतिमान (मॉडल्स) है: उदारवादी लोकतंत्र, साम्यवादी तंत्र, सर्वाधिकारवाद । प्रत्येक व्यवस्था में अपनी आर्थिक व्यवस्था, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और समाजिक संरचना होती है। लेकिन कुल मिलाकर अनके विचारकों के अनुसार आधुनिकीकरण का सम्बन्ध आर्थिक पैदावार (ग्रोथ) से होता है। आर्थिक पैदावार औद्योगीकरण पर निर्भर है। औद्योगीकरण सामाजिक संरचनाओं को भी प्रभावित करता है। जब सामाजिक, आर्थिक, संस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आते हैं तब राजनीतिक आधुनिकीकरण होने लगता है।

भारत के संदर्भ में हम देखते हैं कि यहां पारम्परिक सत्ता का ह्रास 1858 से ही आरम्भ हो गया। उसके स्थान परविशेषरूप से स्वतंत्रता के बाद एक एकल, धर्मनिरपेक्ष और राष्ट्रीय राजनीतिक सत्ता का उदय हुआ। राजनीतिक व्यवस्था की मांगो को पूरा करने के एक अत्यंत दक्ष केन्द्रीकृत प्रशासकीय सेवावर्ग अस्तित्व मे आया । व्यक्तियों में राजनीतिक व्यवस्था में भागीदरी की भावना बढ़ी। पंचायती राज इसकी एक मिसाल है। नई राजनीतिक संस्थाओं जैसे राजनीतिक दल, हित समूह, सामाजिक आंदोलन अस्तित्व में आये और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अन्र्तसम्बन्धों की भावना बढ़ी। भारत की ओर से गुट निरपेक्षता के आंदोलन का बढावा देना इसका उदाहरण है। नये मूल्य जैसे समाजवाद और मौलिक अधिकारों के विचार पनपे।

भारत में आधुनिकीकरण लगभग दोनों चरणों से होकर गुजरा हैं- ऐतिहासिक और विकासवादी। यह विकास का परिणाम हैं यद्यपि यह पूर्ण नहीं है, सत्त विकास की ओर अग्रसर है। इसके संरचनात्मक और संस्कृतिक प्रतिरूप सामने आने लगे हैं जिनमें अर्न्तता, संस्थाकरण और राष्ट्रीय एकीकरण महत्वपूर्ण हैं।

2.7 परिवर्तनशीलता और भारत का राजनीतिक आधुनिकीकरण

पहले बताया जा चुका हैं कि परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट यह चार परिवर्तनशीलतांए हैं जो राजनीतिक आधुनिकीकरण को प्रभावित करती है। भारत में 1857 से ही परम्परा और आधुनिकीकरण का टकराव देखने को मिलता है। धार्मिक और सामाजिक आंदोलनों के समय यह टकराव तेज हुआ और आज भी खाप पंचायतों के निर्णय आधुनिक न्यायपालिका को चुनौती देते नजर आते है। 1857 के बाद परिस्थितियों के अनुसार आधुनिकीकरण में गतीशीलता आयी। जहां तक नेतृत्व का प्रश्न हैं भारत के आधुनिकीकरण में एक अत्यंत कुशल नेतृत्व की भूमिका रही है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी का और स्वतंत्रता के बाद आधुनिक भारत के निर्माण के लिए जवाहरलाल नेहरू का नेतृत्व बहुत महत्वपूर्ण रहा है। आज भी देश में नेतृत्व की कमी नहीं। भारत को तीसरी शक्ति बनाने में भारतीय नेतृत्व की प्रशंसा करनी होगी। आज भारत मे जो संरचनाऐं और संस्कृति उभरी हैं और एक सक्षम राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आई है, इसमें भारतीय नेतृत्व का कुशल निदेशन तथा मूल्य कारक बने है। अन्त में वे संकट हैं जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था का सामना करते है। इनमें राष्ट्रीय पहचान, राजनीतिक वैधता और प्रवेश मुख्य है। लोग राजनीतिक व्यवस्था के प्रति वफादार हुए हैं राष्ट्र को उन्होंने अपनी पहिचान बनाया है। दूसरी ओर चुनावों के माध्यम से आधुनिक अभिजात वर्ग तथा सत्ता को वैद्यता मिली है। प्रवेश की दृष्टि से एक केन्द्रीकृत शक्ति-संसद अस्तित्व में आई है, अन्तिम सत्ता की एक अन्तिम मानवीय संस्था-कार्यपालिका का उदय हुआ है। वैधानिकता प्रदान करने के लिये एक मानवीय स्त्रोत न्यायपालिका ने जन्म लिया है। राजनीतिक संचार की व्यवस्था, लोगों की भागीदारी, राजनीतिक दलों का उदय

सुनिश्चित हुआ है। संसाधनों का दोहन करके उनका सदुपयोग आरंभ हुआ हैंजिससे आर्थिक विकास में गतिशीलता आई है। परन्तु यह अन्त नहीं है। भारतीय संस्थाऐं एवं संरचनाऐं किसी न किसी दबाब में रहती है। पर यह कहा जा सकता हैं कि पिछले साठ सालों से इन संरचनाओं ने दबावों का सफल सामना किया है । त्रिशंकु लोक सभा ने किसी न किसी प्रकार से शासन को स्थायित्व दिया है।

2.8 भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास

विकास और आधुनिकीकरण का गहरा सम्बन्ध है। लक्ष्य आधुनिक समाज की स्थापना करना हैं पर आधुनिक समाज क्या है, यह समझना होगा। आधुनिक समाज का अर्थ हैं नगरीयकरण, साक्षरता सामाजिक गतिशीलता और तकनीकीकरण। आधुनिक जीवन की यह अनिवार्य शर्ते है। इसके अतिरिक्त आधुनिकीकरण का अर्थ हैं पारम्परिक समाज का विखरना और सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिपेक्ष दृष्टिकोण अपनाना, न्याय की स्थापना और राष्ट्रीय राज्य को एकमात्र राजनीतिक इकाई मानना। इस तरह आधुनिकीकरण एक क्रान्ति है। इसे रोक पाना कठिन है।

भारत के संदर्भ में हम देखेगें कि 1947 के बाद से औद्योगीकरण के माध्यम तथा तकनीकी के प्रयोग से शहरों और गांवों का विकास हुआ है। पंच वर्षीय योजनाओं ने इस गति को तेज किया है। तेजी से नगरीयकरण हुआ हैंऔर जैसा कि भारतीय संविधान की प्रस्तावना दर्शाती है। सामाजिक सम्बन्धों में धर्मनिरपेक्षता का दृष्टिकोण अपनाया गया। समाजवाद सामाजिक समानता लाने का एक महत्वपूर्ण उपकरण बना है। राज्य की नीति के निदेशक तत्वों ने सामाजिक न्याय को और मौलिक अधिकारों की संवैधानिक व्यवस्था ने स्वतंत्रता को बढावा दिया है। मूल्यों, दृष्टिकोणों और अपेक्षाओं में परिवर्तन आया है। लगभग सभी राजनीतिक दल समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र के प्रति वचनवद्ध है।

2.9 सामाजिक गतिशीलता और भारत

भारत में सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक विकास साथ साथ चल रहे है। उदाहरण के लिये औद्योगिकरण ने साक्षरता, नगरीयकरण की दर यदि एक ओर बढाई हैं तो राष्ट्रीय उत्पादन बढा है और प्रति व्यक्ति आय भी बढ़ी है। गत दस वर्षो से इस वृद्धि में गति आई है। साक्षरता लगभग 80 प्रतिशत है, नगरीयकरण में 100 प्रतिशत वृद्धि हुई, राष्ट्रीय उत्पादन 9.2 प्रतिशत बढा है। प्रति व्यक्ति आय 1960-90 की तुलना में चौगुनी हो गई है। लेकिन चुनाव राजनीति ने लोकतंत्र के उच्च आदर्श को नहीं पाया है। दलगत राजनीति, राजनीतिक अपराधीकरण और धन शक्ति ने लोकतंत्र को दबाब में डाल दिया है। नौकरशाही पूरी तरह लालफीताशाही में परिवर्तित हो चुकी है। जनता और सेविवर्ग में दूरियॉ बढ़ी है। इसके बावजूद क्योंकि आर्थिक विकास हो रहा है, राजनीतिक व्यवस्था बिखरी नहीं है। साथ ही राजनीतिक व्यवस्था के स्थायित्व ने आर्थिक विकास को गतिशील रखा है। ऐसी

कोई उम्मीद नहीं हैं कि भारत का आधुनिकीकरण पाकिस्तान की तरह बिखर जाये। फिर भी भारत मे पूरी तरह से आधुनिकीकरण आ चुका है, यह कहना अतिश्योक्ति होगा।

भारत में आधुनिकीकरण प्रक्रिया को गतिशील हुए लगभग 60 वर्ष हुए है। अतः हम अभी ब्रिटेन और अमरीका से लगभग 200 वर्ष पीछे है। भारत में पारम्परिक संस्थाऐं अस्तित्व में है । एक केन्द्रीय परिवार का विकास नहीं हुआ है। लेकिन एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की मजबूत नीव पडी है। भारत अमरीका और चीन के बाद एक निश्चित आर्थिक पैदावार के स्तर की ओर बढ रहा है, यद्यपि इसको झटके लगते रहते है। भ्रष्टाचार और हिंसा ने भारतीयों में निराशा को बढावा दिया है। भारत में जन संख्या विस्फोट ने आर्थिक खुशहाली को सीमित किया हैं यद्यपि 1980 के दशक से स्थिति बदली है। शिक्षा के क्षेत्र में देश बहुत आगे बढा है । विशेषरूप से तकनीकी शिक्षा में एक क्रान्ति आई है। फिर भी साक्षरता की दर शत प्रतिशत नहीं हुई है। 99 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं परन्तु सीखते कुछ नहीं। परिणामस्वरूप मानवीय शक्ति की बरबादी हो रही है। बेरोजगारी का कारण जन संख्या विस्फोट है। नवयुवक पश्चिमी देशों की ओर भाग रहे है। नगरीयकरण के कारण लगभग सभी औद्योगिक नगरों पर दबाव बढा है। नगर गन्दे हुए है, यातायात के जमाव से संकट पैदा हुआ है। अपराधीकरण बढा हैं और मूल्यों में गिरावट आई है। दिल्ली संसार के सब से गन्दे और असुरक्षित शहरों में से एक है। यह सारी बातें आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को दबाव में रखती है।

2 .10 आधुनिकीकरण की दुविधाएं और भारत

जहां तक परम्पराओं का प्रश्न हैं भारतीयों में भी यह दुविधा हैं कि वे किस परम्परा को छोड़े और किस नई संरचना को अपनाएं। ग्रामीण जीवन अभी पुराना है। लोंगों को उस से लगाव है । वे नहीं चाहते कि महिलांए पढ़े और आगे बढ़े। दूसरा भारत में जो परिवर्त आ रहा हैं वह विकास का पणिाम है। क्रन्तिकारी परिवर्तनों को लाने में दुविधा है। तीसरे भारतीय जातिय और साम्प्रदायिक वफादारियों से निकलकर धर्मनिरपेक्षता की ओर जाने में असमंजस्य की स्थिति में रहते है। इसलिए भारतियों में गहरी जातियता और साम्प्रदायिकता की जड़ें मजबूत हैं। राजनीति का धर्मिकीकरण इसका एक उदाहरण है। राजनीतिक समीकरण जातिय और धार्मिक होते है। चौथे राष्ट्रीय एकीकरण की समस्या है। भारत में यह स्थिति गंभीर है। जातिय, साम्प्रदायिक और भ्रष्ट शक्तियों ने एकीकरण को कमजोर किया है। भाषा और क्षेत्र इस दिशा में एक बाधा हैं फिर भी यदि राष्ट्रीय एकीकरण की इच्छा हैंतो यह आशाजनक तत्व है। पांचवे भारत में सबसे अच्छी बात यह हैं कि यहां लोकतंत्र को एकाधिकारवाद या साम्यवाद की कोई चुनौती नहीं है। इसलिए भारतीयों में राजनीतिक व्यवस्था के स्वरूप को लेकर कोई दुविधा नहीं है। भारत में विचारात्मक जड़ता नहीं है। नवीन विचार अस्तित्व में आते है जैसे धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, लोकतांत्रिक उदारवाद, विश्व शांति, सामाजिक न्याय इत्यादि। आधुनिक भारत में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता का विचार विकसित

हुआ है। कुल मिलाकर भारत अब आधुनिकीकरण की दुविधाओं की स्थिति से निकल चुका हैंऔर विकास तथा आधुनिकता की ओर अग्रसर है।

2 .11 भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण की बांधाएं

भारतीय राजनीतिक आधुनिकीकरण सतत् विकास का परिणाम है। भारत में एक निश्चित राजनीतिक व्यवस्था अस्तित्व में आने को है। गत65 वर्षो में यदि पूरी तरह आधुनिकीकरण नहीं हुआ हैं तो उसके कारण हैं जो व्यवस्था पर दबाव का काम करते है। संक्षेप में वह दो प्रकार है:-

2 .11.1 क्षेत्रवाद की राजनीति

यद्यपि संसदीय व्यवस्था के लिए बहुदलीय व्यवस्था अनिवार्य हैं परन्तु दलों की बहूलता और विशेषरूप से क्षेत्रीय दलों का अस्तित्व आधुनिकीकरण के लिए एक चुनौती है। डी.एम.के., ऐ.आई.ऐ.डी.एम.के., तेलगूदेशम, अकाली दल, समाजवादी पार्टी, जनता दल, नेशनल कांग्रेस और बहुजन समाज पार्टी ऐसी राजनीतिक दल हैं जो क्षेत्रवाद, भाषावाद, सम्प्रदायवाद, जातिवाद और अलगाववाद की संर्कीण राजनीति चलाकर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। इनका कोई राष्ट्रीय दृष्टिकोण या विचारधारा नहीं होती। यह राजनीतिक व्यवस्था के लिए संकट पैदा करते हैं। केन्द्रीय सत्ता में सम्मिलित होकर यह विघटन की स्थिति पैदा करते हैं।

क्षेत्रवाद का सम्बंध देश के एक क्षेत्र से होता है। जहां भाषा, संस्कृति और एक विशिष्ट आर्थिक समुदाय की समानुरूपता हैं वहां क्षेत्रवाद पनपता है। यह मनोवैज्ञानिक स्थिति है। क्षेत्रवाद के समर्थक स्वयं को राष्ट्र से कम क्षेत्र से अधिक जोड़ते है। इनका दृष्टिकोण राष्ट्रवादी नहीं होता यह क्षेत्रीय स्वतंत्रता के पक्षधर होते हैं। भारत में यह स्थिति बडी गंभीर है।

क्षेत्रीय अनेकता क्षेत्रवाद का कारण हैं यहां लगभग दो दर्जन परिभाषित एक रूप भाषाई क्षेत्र है। इनकी अपनी संस्कृति अपनी ऐतिहासिक परम्पराएं है। अनेक अन्य तत्वों ने इनका निर्माण किया है। जिनमें जन्म जातिय , धार्मिक, राजनीतिक और पारम्परिक तत्व है।

भारत में क्षेत्रवाद की अनेक मांगे हैं जिनमें भारतीय संघ से अलग होना, पृथक राज्य का दर्जा, अन्र्तराज्य में विवाद आदि हैं। तमिलनाडू, नागालैंड, मिजोरम, खालिस्तान और जम्मू-कश्मीर राज्य में ऐसी अलगाववादी मांगे उठी हैं। मेघालय, तिलंगाना, विदर्भ, हरित प्रदेश, पूर्वांचल इत्यादि पृथक राज्यों की मांगे महत्वपूर्ण है। उत्तराखण्ड, झारखंड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों के निर्माण ने पृथक राज्य की मांग को बढावा दिया है। महाराष्ट्र, मैसूर सीमा विवाद जिसमें आन्ध्रा और कर्नाटक का जल विवाद प्रसिद्ध है। कृष्णा आयोग 2011 ने इस विवाद को हल करने का प्रयास किया है।

एक नया क्षेत्रवाद सामने आया है। जिसका सम्बन्ध आंतरिक प्रवास (माईग्रेशन) से महाराष्ट्र में यह समस्या विकट हैं जहां उत्तर भारतीय प्रवासीयों के विरूद्ध शिवसेना ने एक संगठित आंदोलन छेड रखा है। असम में भी यह समस्या विकट है।

यह कहा जा सकता हैं कि पहचान का संकट आर्थिक विकास की विषमता औरं संर्कीण निहित स्वार्थ क्षेत्रवाद को जन्म देते हैं राजनीतिक व्यवस्था के साम्य को बिगाडते है।

2 .11.2 धार्मिक राजनीति

धर्मनिरपेक्षता आधुनिकीकरण की एक अनिवार्य शर्त है। इसका अर्थ हैं एक भौतिक जीवन जो धर्म के बंधनों से मुक्त हो। जहां आस्था सर्वोपरि न हो लेकिन इसका अर्थ यह नहीं हैं कि व्यक्ति का कोई निजी धर्म न हो। धर्मनिरपेक्षता राजनीति को धर्म से अलग करती है। धर्म का विरोध नहीं लेकिन धर्म का सहयोग भी नहीं। यह राज्य का लक्ष्य हैं राज्य धर्म की आजादी देता हैं लेकिन धार्मिक नहीं बनाता। राज्य के सामने सब समान है। कल्याणकारी राज्य धर्म का पोषक नहीं होता। वह अर्थ व्यवस्था का पोषक होता है। भारतीय संविधान ने धर्म निरपेक्ष राज्य की गारंटी दी है।

लेकिन सच हैं कि जहां संविधान की आत्म धर्मनिरपेक्ष हैं वहां व्यवस्था में इस आत्मा को कुचला गया है। स्वयं डा. राधाकृष्णन और महात्मा गांधी धर्मपरक राजनीति के पक्षधर थे और आज भारत की पूरी राजनीति किसी न किसी तरह धर्म केन्द्रित है। लगभग सभी धर्म अंधविश्वासों, अतार्किक हठधर्मी और कुरीतियों से पीडित है । सब धर्मो के सम्मान का अर्थ हैं कि सारी गंदगी का सम्मान। राज्य कुरीतियों का निवारण करने में सक्षम नहीं है। धार्मिक पाखंड समानता स्वतंत्रता और भाईचारे को निषेध करता है। सर्वधर्म समाभाव का विचार एक कोरी कल्पना है।

लगभग सभी धर्मो में धार्मिक कट्टरपन और रूढीवाद पनपा है। समान व्यतिक कानून लागू नहीं है। न्यायपालिका आस्था और धर्म के आधार पर निर्णय देती है। यह स्थिति गंभीर है।

राजनीतिज्ञ सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म का सहारा लेते है। सम्प्रदायिक आधार पर वोट बैंकों की राजनीति राजनीतिक प्रक्रिया को प्रभावित करती है। राज्य धर्म का पौशक है। धार्मिक समूहों से गठजोड़ करता हैं और धार्मिक आदेशों (फतवों) का समर्थन करता है। कुल मिलाकर भारतीय राजनीति व्यवस्था धर्म के दबाव में है, जो आधुनिकीकरण के लिए एक खतरा है।

2 .11.3 भ्रष्टाचार और आधुनिकीकरण

सन्थानम ने अपनी रिर्पोट मे लिखा हैं कि भारत पुनः सोने की चिडिया बन सकता है। यदि यहां भ्रष्टाचार न हो सन्थानम को दुःख था कि भारतीय व्यवस्था जो भ्रष्टाचार का शिकार हो गयी है। आज सम्भवतः जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार की पकड मजबूत हुई है। जब पैमाने पर घोटोले इस बात का

संकेत हैं कि भ्रष्टाचार ने पूरी तरह आर्थिक व्यवस्था को दबा लिया है। सुखना भूमि घोटाला इसका उदाहरण हैं जिसमे जनरल राथ को कोर्ट मार्शल से दण्डित किया गया। अर्थात अब सैना में भी कीटाणू प्रवेश कर गया है। सर्वोच्च न्यायलय द्वारा भ्रष्टाचार पर उच्च न्यायालय को फटकार यह सिद्ध करती हैं कि न्यायपालिका दूषित हो चुकी है। 2-जी स्पैक्ट्रम घोटाला एक और उदाहरण है। कामान्स वेल्थ खेलो में जो घोटाले हुए वह सर्वविधित है। मुम्बई आदर्श भवन का काण्ड सैनिक पदाधिकारियों, बाबूओं और नेताओं के असली चहरे को दर्शाता हैं क्या यह स्थिति भारत को महानतम आर्थिक शक्ति बनाने में सहायता प्रदान कर सकती है, इसमें संदेह है। आज राजनीतिक व्यवस्था का साम्य बिगड गया और इस तरह आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ठेस पहुचेगी। यह कहा जा सकता हैं कि साम्प्रदायिकता, धार्मिक कहरता, भाषावाद, क्षेत्रवाद भारतीय आधुनिकीकरण की बडी बाधांए है।

2.12 सारांश

संक्षेप में के उक्त भाग में जो तथ्य हमने पढे हैं उनमे राजनीतिक आधुनिकीकरण का अर्थ, यह अवधारणा क्यों और कैसे पनपी, किन राज्यों का राजनीति शास्त्रियों ने अध्ययन किया, कौन से महत्वपूर्ण राजनीति शास्त्री थे जिन्होंने आधुनिकीकरण की अवधारणए निर्मित की, जैसे विषयों की विवेचना की गई है।

साथ ही आधुनिकीकरण के प्रतिमानों, उसके प्रभावों, परिवर्तन शीलताओं जिनमें परम्परा, समय, नेतृत्व और संकट सम्मिलित है, का भी विस्तार से अध्ययन किया गया है। राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास का गहरा सम्बन्ध है। दोनों का लक्ष्य आधुनिक समाज की रचना करना है। उन प्रतिमानों या कारकों को स्पष्ट किया गया हैं जो आधुनिक समाज के लिए अनिवार्य हैं। परम्परागत समाज का बिखरना और उसके स्थान पर एक धर्म निरपेक्ष, उदारवादी, लोकतांत्रिक समाज का उदित होना, आधुनिकीकरण की अनिवार्यता हैं । यह कैसे होता है, इस प्रक्रिया को यहॉ समझाया गया हैं। आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थायित्व का गहरा सम्बन्ध है। परन्तु आधुनिकीकरण बिखर भी सकता हैं यदि उसकी सरंचनाऐं अक्षम हों।

राजनीतिक व्यवस्था के आधुनिकीकरण में नौकरशाही ने सकरात्मक भूमिका भी निभाई हैंऔर नकारात्मक भी। नौकरशाही एक ऐसा जाल हैं जिसमें जनता और उसके प्रतिनिधि बेबस नजर आते हैं। परन्तु यदि असैनिक सेवा वर्ग अपना उत्तरदायित्व निभाये तो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सुगम हो सकती है।

जहां तक पंचायती राज्य का सम्बन्ध हैं इसका लक्ष्य बहुत सुन्दर है। यह भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था प्राण स्त्रोत है। विकेन्द्रीकरण ने जन भागीदारी सुनिश्चित की है। लेकिन पंचायती राज्य ने संघर्ष और द्वन्द को भी बढावा दिया है। यह स्थिति आधुनिकीकरण में एक बाधा है।

दलीय व्यवस्था ने यद्यपि एक ओर भारत की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में सहयोग दिया हैं वहां उसमें बाधांए भी उत्पन्न की है। अक्सर राजनीतिक व्यवस्था राजनीतिक दलों के आचरण के कारण दबाव में आ जाती है। संसद को न चलने देना एक उदाहरण है।

अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिकीकरण और क्षय का सिद्धांत किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया है?
2. राजनीतिक विकास का संस्कृतिक आयाम में अध्ययन किसने किया ?

2 .13 शब्दावली

1. नौकरशाही (ब्यूरियोक्रेसी: एक ऐसी प्रशासकीय व्यवस्था जिसमें नीतियो के निर्धारण में असैनिक सेवीवर्ग।

2. दबाव गुट: ऐसे समूह जो राज्य भीतर वर्गो के हितों की पूर्ति के लिए शासन पर दबाव डालते है।

3. अभिजात (एलाइटस): सत्ताधारी कुलनी वर्ग

2 .14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. हंटिंगटन
2. लूसियन पाई ने

2.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- S.N.Dubey:Indian Political System.

2- L.Prashad :Indian National Movement &Constitutional Movement.

3- S.N.Dubey:Political Science Theory.

2 .16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Apter, David : Politics of Modernisation (1965)

2. Pye, Lucian : Political cuture and Political Development (1955)

3. Parsons, Talcott: Social System (1951

2 .17 निबंधात्मक प्रश्न

1.राजनीतिक आधुनिकीकरण पर निबंध लिखिए।

इकाई 3 : भारत की राजनीतिक संस्कृति

3 .1 प्रस्तावना

3 .2 उद्देश्य

3 .3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा

3 .4 राजनीतिक संस्कृति के आधार

3 .5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व

3 .6 राजनीतिक संस्कृति, आधुनिकीकरण और विकास

3 .7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति अपनिवेश काल में

3 .8 संस्कृतिकरण में सुधार आंदोलनो का योगदान

3 .9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आंदोलन

3 .10 महात्मा गांधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका

3 .11 राजनीतिक संस्कृति के विकास में संवैधानिक विकास का महत्व

3 .12 भारतीय राजनीति का वर्तमान स्वरुप

3 .5 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता

3 .4 भारतीय राजनीतिक संस्कृति और भारतीय संविधान

3 .2 जन साधारण की भूमिका

3 .3 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति

3 .9 सारांश

3 .18 शब्दावली

3 .19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3 .20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3 .21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3 .22 निबंधात्मक प्रश्न

3 .1 प्रस्तावना

राजनीतिक संस्कृति समाज के संदर्भ में राजनीतिक विकास का अध्ययन है। धारणा केवल यह हैं कि एक राजनीतिक पद्धति का दूसरी राजनीतिक पद्धति से अंतर केवल संरचना के आधार पर नहीं होता, बल्कि राजनीतिक संस्कृति की दृष्टि से भी होता है। इसे यूं समझें कि यदि इंग्लैण्ड में संसदीय पद्धति सफल हो गयी तो जरूरी नहीं कि भारत या पाकिस्तान में भी सफल हो। कारण राजनीतिक संस्कृतियों की भिन्नता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक राजनीतिक संस्कृति होती हैंजो उस समाज की राजनीतिक व्यवस्था को सार्थकता प्रदान करती है। इतिहास इस संस्कृति का निर्माण करता है।

संस्कृति एक वृहद विचार है। राजनीतिक संस्कृति सामान्य संस्कृति का एक अंग है। इसलिए राजनीतिक संस्कृति के समय से अलग करके समझा नहीं जा सकता । राजनीतिक संस्कृतियों में अंतर होता है। भारत और चीन की राजनीतिक संस्कृति में अंतर है। इतिहास संस्कृति का निर्माण करता है।

लोगों की अभिवृत्तियां (एटीट्यूडस) विश्वास, भावनांए इत्यादि जो राजनीतिक पद्धति से सम्बन्धी त हो राजनीतिक संस्कृति कहलाते है। इसका अर्थ यह हुआ कि राजनीतिक संस्कृति के लिए एक शासन   या राजनीतिक व्यवस्था होनी चाहिए चाहे वह लोकतांत्रक हो या सैनिक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन के लिए क्षेत्र, कृत्य और मूल्य अनिवार्य है। यह तीन बातें भावनात्मक पर्यावरण तैयार करती है। राजनीतिक संस्कृति इन्हीं को अभिव्यक्त करती है। इसलिए मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों का अध्ययन अनिवार्य है।

सामाजिक संस्कृति के तीन आधार है- ऐतिहासिक भौगोलिक तथा सामाजिक आर्थिक। इसका अर्थ हैं कि इतिहास, भौगोलिक बनावट, सामाजिक मूल्य तथा आर्थिक व्यवस्था राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अहम भूमिका अदा करते है। यह आधार लोंगों को सोच और प्रभाव डालते हैंतथा राजनीतिक संस्कृति का निर्माण करते है। राजनीतिक संस्कृति स्थिर नहीं है, इसका निरंतर विकास होता रहता है। जब यह परिपक्वता की ओर पहुचती हैं तो विकास और आधुनिकीकरण पूर्ण हो जाता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका इसके उदाहरण है।

3 .2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के अपरान्त आप-

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा को पश्चिमी राजनीतिक शास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित सिध्दांतों के संदर्भ में समझ पायेंगे।
- राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा को समझ पाएंगे।

- राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति की विवेचना करना है।
- भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों के वर्गीकरण के साथ साथ उनके टकराव पर नजर डाली जायेगी।
- संविधान की दृष्टि से भी संस्कृति की विवेचना करना एक लक्ष्य हैं तथा यह भी देखना हैं कि जन साधारण का रूख भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रति कैसा है?

3.3 राजनीतिक संस्कृति की परिभाषा

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन अमेरिकी राजनीति शास्त्री उलाम, बियर तथा आमण्ड ने किया है। बाल और पावेल भी इसके समर्थक है। बाल के अनुसार ''समाज की अभिवृत्तियां (एटीट्यूडस), विश्वास, भावनांये और मूल्य जो राजनीतिक पद्धति तथा राजनीतिक मुद्दों से सम्बन्धी त होते है, राजनीतिक संस्कृति के अंतर्गत आते है। इस सम्बन्ध में चार बातों को समझना होगा:

1.समाज के लोंगों में एक सामान्य प्रवृति होती है, जैसे भावनात्मक, बैद्धिक, नैतिक दृष्टिकोण।

2.सामान्य मानव प्रवृति सामान्य मूल्यों विश्वासों और अभिवृत्तियों को जन्म देती है।

3.यह मूल्य एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुचतें हैं और कुछ संशोधनो के साथ समाज की सामान्य संस्कृति का निर्माण करते है।

4.समाज की इस सामान्य संस्कृति के कुछ पहलुओं का सम्बन्ध शासन के संचालन से होता है। यही पहलू राजनीतिक संस्कृति है, अर्थात अभिवृत्तियां, विश्वास तथा भावनांए राजनीतिक आचरण का निर्माण करके एक संस्कृति को विकसित करती है।

लूसियन पाई ने राजनीतिक संस्कृति में तीन तथ्यों के अध्ययन करने पर बल दिया है-

1.राजनीति का क्षेत्र क्या है?

2.राजनीतिक क्रिया के मापदण्ड क्या है?

3.वे मूल्य क्या हैं जो राजनीतिक क्रिया के लिए अनिवार्य है?

यह कहा जा सकता हैं कि राजनीति संस्कृति भावनात्मक पर्यावरण को अभिव्यक्त करने का साधन हैं इस पर्यावरण के अन्तर्गत कोई राजनीति व्यवस्था कार्य करती है।

राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में इतिहास और परिस्तिथितियां महत्वपूर्ण भूमिक अदा करती है। इसलिए किसी समाज की राजनीतिक संस्कृति को उसके इतिहास के संदर्भ में देखना होगा।

सार यह हैं कि राजनीतिक संस्कृति जिन विशेष घटकों पर टिकी होती हैं वे है-मूल्य, विश्वास तथा अभिवृत्तियां, जो लोंगों की एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में होती है। उदाहरण के लिए यदि व्यवस्था लोकतांत्रिक हैं तो लोंगों की अपेक्षांए होती हैं कि चुनाव समय पर और निष्पक्ष हो, विश्वास खो देने पर मंत्री त्यागपत्र दें, संसद ठीक प्रकार से चले, कार्यपालिका उत्तरदायी हो, प्रशासन और शासन चुस्त हो, विचारों की अभिव्यक्ति का अधिकार मिले, प्रत्याशियों को चुनने की स्वतंत्रता हो। एक संवेदनात्मक अभिवृत्ति यह हैं कि विधायकों को संसद में पूरी भद्रता का आचरण करना चाहिए, वे आदर्शो के विपरीत व्यवहार न करें। इसी सोच का नाम राजनीतिक संस्कृति है।

दूसरे शब्दों में इसे यूं समझिये कि जब संसद या कार्यपालिका संवेदनात्मक अभिवृत्तियों के विपरीत कार्य करती है: दलबल होता है, विधिवत निवार्चित सरकार गिरा दी जाती है, भ्रष्टमंत्री अपने पद पर बने रहते हैं तब उनके विरूद्ध जो भांवनाये पैदा होती है, जो जन आक्रोश उमड़ता है, जो आंदोलन खडे होते हैं जो क्रान्तियां आती हैं, वह सब राजनीतिक व्यवस्था और अभिवृत्तियों की रक्षा के लिए होता है।

3.4 राजनीतिक संस्कृति के आधार

राजनीतिक व्यवस्था के प्रति लोंगों के रख रखाव और विश्वास पर कोई राजनीतिक व्यवस्था टिकी होती है। इस संस्कृति के वे तत्व कौन से हैं जिन की यह उपज होती हैं या जो इसके आधार भी बन सकते है, हमें यह देखना होगा। बियर तथा इलाम ने ऐसे तीन आधारों को स्वीकार किया हैः ऐतिहासिक, भौगोलिक तथ सामाजिक-आर्थिक।

किसी समाज में एक राजनीतिक व्यवस्था क्यों बनी रहती हैं और क्यों टूटती है, ये इतिहास बताता हैं इसके कारण समाज की संस्कृति के गर्भ में खोजे जा सकते है। इतिहास इसमें सहायता करेगा। उदाहरण के लिए इंग्लैण्ड में राजनीतिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण ढंग से धीरे-धीरे आया। यह राजनीतिक संस्कृति का परिणाम हैं जिनका निर्माण सैकडों वर्षो में हुआ। एडमण्ड बर्क ने इस संस्कृति की प्रशंसा की। दूसरी ओर फ्रांस की राजनीतिक व्यवस्था 1789 में क्रांति के माध्यम से टूट गयी और आगे भी उसके टूटने की संभावना बनी रही। तब तक फ्रांस में जो राजनीतिक संस्कृति पनपी उसका आधार हिंसा था। उसमें संवैधानिक, अहिंसात्मक लोकतंत्रीय मूल्यों के प्रति अविश्वास था। राजनीतिक अवधारणा की दृष्टि से फ्रांस की क्रांति की आलोचना की गयी। क्योंकि वह अधिक टिकाउ नहीं थी। इसके विपरीत अमेरिका और भारत ने इंगलैण्ड का अनुसरण किया, क्योंकि इन देशों को एक ऐतिहासिक आधार मिल गया जो लोकतांत्रिक था।

राजनीतिक संस्कृति का दूसरा आधार है, भौगोलिक परिस्थितियां और बनावट। इंग्लैण्ड को सजातिय बनाने का श्रेय उसकी सीमाओं को है। परिणाम स्वरूप लम्बे समय तक यहां अन्य जातियों के लिए प्रवेश द्वार बंद रहे और वहां वह समस्यांए नहीं आयी जो भारत के सामने आयी। भारत की लम्बी, चौड़ी सीमाओं के कारण यहां पर जाति और धर्म के लोंगों का प्रवेश हुआ और परिणाम स्वरूप भारत एक विजातिय (हैट्रोजीनियस) समाज बन गया। सजातिय ता एकता लाती हैं और सरल सामान्य राजनीतिक संस्कृति बनती है।

भौगोलिक परिस्तिथियों ने अंतर्राष्ट्रीय संस्कृति को भी जन्म दिया है। परन्तु इसका आधार भी राष्ट्रीय राजनीतिक संस्कृति माना जायेगा। प्रभाव क्षेत्रों की राजनीति को निश्चित करने का बहुत बड़ा उत्तरदायित्व उसकी भौगोलिक स्थिति को है।

राजनीतिक संस्कृति का तीसरा निर्धारक तत्व सामाजिक आर्थिक स्थिति हैं सामाजिक आर्थिक विकास के दो पहलू हैं- शहरी औद्योगीकरण समाज तथा ग्रामीण कृषक समाज। प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति और विकास पहले रूप की विशेषता है, अनुरूपता और जड़ता दूसरे रूप की। परनतु कुछ समय के पश्चात विज्ञान और तकनीकिकरण का प्रभाव औद्योगिक समाज और कृषक समाज दोनों पर तेजी से पडता है। उत्पादन बढता है, यातायात और संचार व्यवस्था विकसित होती है, आयात और निर्यात बढता है, प्रवावर्ष (माइग्रेशन) और उत्प्रवास (इनमीग्रेशन) की प्रक्रिया आरंभ होती है। इसका प्रभाव क्रांतियों और युद्धों पर पड़ता है।

परिणाम स्वरूप लोगों के राजनीतिक मूल्यों तथा विश्वासों में परिवर्तन आने लगते हैं।कृषक मजदूर बन जाते हैं, मजदूर बुर्जुआ बन जाते हैं और साम्राज्यवादी व्यवस्था लागू हो जाती है। इस प्रक्रिया का प्रभाव राजनीति पर पडता हैं और नयी राजनीतिक संस्कृति पनपती है।

3.5 राजनीतिक संस्कृति और स्थायित्व

राजनीतिक संस्कृति राजनीतिक स्थायित्व और परिवर्तन के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।यह लोंगों को सत्ता से जोड़ती है। सत्ता रानीतिक व्यवस्था में स्थायित्व, प्रभावशीलता तथा प्रतिनिधित्वता स्थापित कर सकती है। उदाहरण के लिए ब्रिटेन में लोकतंत्रीय मूल्य लोकतंत्रीय सत्ता का निर्माण करते है। जो राजनीतिक व्यवस्था में गहरा स्थायित्व लाते है, जबकि फ्रांस में केन्द्रीयकरण की व्यवस्था हैं और वहां इसकी प्रशंसा होती है। दोनों देशो में अपनी-अपनी राजनीतिक संस्कृति है। यहां यह विश्वास टूट जाता हैं कि केवल लोतांत्रिक या संसदीय व्यवस्था ही अच्छी होती है। सर्वाधिकारवाद भी अच्छा हो सकता है। अगर सत्ता में स्थायित्व पैदा करे। चीन इसका उदाहरण है।

3.6 राजनीतिक संस्कृति आधुनिकीकरण और विकास

राजनीतिक संस्कृति से जुड़ी हुई अगली समस्या हैं राजनीतिक आधुनिकीकरण और विकास की। यही राजनीतिक परिवर्तन है। परम्परावाद तथा आधुनिकीकरण एक दूसरे के विरोधी है। नेतृत्व और समय समाज को आधुनिकीकरण के ओर ले जाना चाहते है, परम्परावाद मार्ग में बाधांए उत्पन्न करता है।

राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं- अनुदार और प्रगतिशील। अनुदार पहलू क्रांतिकारी परिवर्तन का विरोधी है, जबकि प्रगतिशील पहलू धीरे-धीरे आधुनिकीकरण का हामी है। इसके अन्तर्गत परम्परागत संस्कृति की सजीव बातों को स्वीकार करके उनका मेल नवीन व्यवस्थाओं से कराया जाता है। नेहरू का यही दृष्टिकोण था। यह बदलाव तीसरी दुनिया की विशेषता है।

3.7 भारतीय राजनीतिक संस्कृति उपनिवेशकाल में

9 वीं सदी में अंग्रेज भारत में आये तब यहां मुगलों का राजतंत्रीय शासन था। लोग अधीनस्थ थे और खामोशी से सत्ता को स्वीकार करते थे। अंग्रेजो ने पहले व्यापारियों के रूप मे भारत में अपना प्रभाव जमाया। फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्लासी युद्ध 1757 के बाद भारत पर राजनीतिक अधिकार जमा लिया। एक लम्बे समय तक यहां भी लोग कम्पनी के शासन को सहन करते रहे। उनकी भागीदारी शून्य थी। 1857 में यह धैर्य टूट गया। लोंगों की सोच बदली, कुछ राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई और इस तरह विद्रोह हो गया। यहां से भारत में राजनीतिक संस्कृति का निर्माण आरम्भ होता है। इस सोच का एक परिणाम यह निकला कि कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और भारत की सत्ता की बागडोर ब्रिटिश ताज और संसद के हाथो में आ गयी। यहां से सवैंधानिक विकास शुरू हो गया। इसका अर्थ यह नहीं था कि भारत में लोकतंत्र की स्थापना आरम्भ हो गयी। राजनीतिक व्यवस्था सर्वाधिकारवादी बनी रही।

यह साम्राज्यवाद का काल था। भारत इंगलैण्ड का पूरी तरह से उपनिवेश बन गया। वाणिज्य पूंजी जो कम्पनी की विशेषता थी, औद्योगिक पूंजी में बदल गयी और अन्ततः उसने वित्त पूंजी का रूप ले लिया। सारांश यह हैं कि उपनिवेशवादी दौर मे भारत में एक आर्थिक व्यवस्था पनपी जो औद्योगिकरण का परिणाम थी। 19वीं सदी तक यहां इसका पूरा विकास हो गया। भारतीय घरेलू उद्योग धन्धे चौपट हो गये लेकिन भारतीय सब कुछ सहन करते रहे। फिर भी निराशा और असंतोष गहराया।

आर्थिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व्यवस्था भी अंकुरित होने लगी। 9 73 के रेग्यूलेटिंग एक्ट ने भारत में एक गर्वनर-जनरल, उसकी परिषद और सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की। 9 84

के एक्ट में दोहरा शासन पूरी तरह अस्तित्व में आ गया। वाणिज्य पूंजी ने भारत को इंग्लैण्ड का एक बाजार बना दिया जो कच्चा माल भी निर्यात करता था। आधुनिक इंग्लैण्ड वास्तव में औद्योगिक पूंजीवाद के कारण भारतीय लूट पर बना। प्रथम युद्ध से पूर्व भारत मेंवित्त पूंजी का दौर रहा। भारत का शोषण पूरी तरह बढ़ गया। असंतोष और गहराया।

3.8 संस्कृतिकरण में सुधार आन्दोलनों का योगदान

जहॉ एक ओर शासन की नीतियों ने राष्ट्रीय भावनाओं को जन्म दिया, वहां धार्मिक और सुधार आन्दोलनों ने इस प्रवृत्ति का विकास किया। यहां यह मानना होगा कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में विशिष्ट जातियों की भूमिका का बहुत महत्व होता है। यह व्यक्ति व्यवस्था अथवा इतिहास से प्रभावित होकर जन साधारण की सोच बदलते है। ऐसे व्यक्तियों में स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, राज राम मोहन राय, सर सय्यद अहमद खॉ इत्यादि आते हैं। आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसायटी भारतीयों को उनके गौरवशाली अतीत की ओर ले जाना चाहती थी। यह वेदों को ज्ञान का स्त्रोत मानते थे। इन आन्दोलनों ने भारतीय में पश्चिमी जगत के बारे में सोच बदली। वे स्वंय को अब श्वेत लोगों से कम नहीं मानना चाहते थे । वे अपने भाग्य का फैसला अब स्वंय करना चाहते थे ।

इस तरह धार्मिक और सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने प्रत्यक्ष रूप से जिस तरह उनकी इच्छाओं, भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं और अभिव्यक्तियों को प्रभावित किया उसने तत्कालीन शासन या सत्ता के प्रति धीरे धीरे एक नकारात्मक रुझान पैदा किया जो उस समय की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में साधक हुआ।

3.9 राजनीतिक संस्कृति और स्वाधीनता आन्दोलन

निराशा, हताशा और उदासी का परिणाम 1857 का विद्रोह था। वह पहला स्वाधीनता संग्राम था जो वेरहमी से कुचल दिया गया। सर सय्यद ने ‘‘असबाब बगावत-ए-हिन्द, में लिखा कि जातिय दंभ और सामाजिक असमानता विद्रोह का कारण थे । विद्रोह के बाद ब्रिटिश संसद का शासन आरंभ हुआ और नीतियां बदली। 1858 के एक्ट ने कुछ मरहम लगाया। अतः शिक्षित भारतीयों की राजनीतिक व्यवस्था के प्रति पुनः सोच बदली। ब्रिटिश इण्डिया ऐसोसिऐशन 1851 तथा इण्डियन एसोसियेशन 1876, बंगाल नेशनल लीग 1884 इत्यादि अस्तित्व में आये। इसका लक्ष्य भारतीयों और अंग्रेजो के दृष्टिकोण में ताल मेल बिठाना था।

जैसा कि लिखा जा चुका हैं राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में भूमिकाओं और अभिकर्ताओ का बड़ा योगदान होता है। ओ हयूम ऐसे ही अभिकर्ता थे। दादा भाई नैरोजी, फिरोजशाह मेहता, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने हयूम का साथ दिया। 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अस्तित्व में आ गई।

कांग्रेस की पहली विचार धारा को उदारवादी माना जाता है। अर्थात शासन के प्रति नरम दृष्टिकोण, ब्रिटिश शासन को एक वरदान मानना, मांगो के लिये संवैधानिक तरीके अपनाना, स्वशासन की मांग करना इत्यादि। इस उदारवाद का कारण था नेतृत्व पर अंग्रेजी या पश्चिमी संस्थाओं, विचारों, मूल्यों, संस्कृतियों का प्रभाव। अतः 1885 से 1900 तक भारतीयों का यही दृष्टिकोण रहा। बाद में कांग्रेस में उग्र विचारधारा पनपी। कारण था शासन की निरंकुशता और उदासीनता, कुप्रशासन , बंगाल का विभाजन और दमन। इस उग्रता ने 1905 में स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। स्वतंत्रता की मांग उठी, द्वन्द बढा़ और कांग्रेस का विभाजन हो गया।

उधर मुसलमान आशंकित होने लगे। बहुसंख्यक अल्पसंख्यक मनोवृत्ति पैदा हुई। स्वराज्य आन्दोलन ने इस द्वन्द को तेज किया। परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग अस्तित्व में आ गई। यहॉ से आरम्भ हुई साम्प्रदायिकता की राजनीति और राष्ट्रवादी विचारों का विघटन होने लगा। लार्ड कर्जन और लार्ड मिन्टो इसके लिए जिम्मेदार थे। 1909 के एक्ट या मारले-मिन्टो सुधारों ने भी इसकी तीव्रता को कम नहीं किया। लेकिन जैसे ही यह महसूस किया गया कि धर्म विभाजन या वर्ग विभाजन का लाभ सत्ता पक्ष उठा रहा है, तब 1916 में लखनऊ पैक्ट अस्तित्व में आ गया। उदार अनुदार का मेल और हिन्दु मुस्लिम एकता इसका परिणाम था।

3.9 महात्मा गाँधी की राजनीतिक संस्कृति में भूमिका

हम पहले लिख चुके हैं कि राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में अभिकर्ता की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। महात्मा गाँधी इस अर्थ में अद्वितीय अभिकर्ता थे। दक्षिण अफ्रीका से लौटकर उन्होंने अपनी सत्याग्रह के उपकरण का सफल प्रयोग किया। यह प्रयोग एक भावनात्मक अभिवृत्ति पर टिका हुआ था जिसे गाँधी ने अहिंसा कहा। खिलाफत के संकट और रौलेट एक्ट ने उनके सत्याग्रह के प्रयोग का अवसर दिया। जलियान वाला बाग काण्ड ने समस्या और उग्र कर दी। भारतीयों में सत्ता के प्रति आक्रोश था। विद्रोह या हिंसक क्रान्ति का वातावरण बना ऐसे में महात्मा गाँधी के सत्याग्रह के उपकरण ने लोंगों को शान्तिपूर्ण तरंगो की ओर मोड़ दिया। असहयोग आन्दोलन 1920 इस का परिणाम था। भारतीय अहिंसा के मार्ग पर चल पड़े। यह एक बड़ी क्रान्ति थी। लेकिन चौरी चौरा काण्ड के बाद महात्मा गाँधी ने महसूस किया कि लोग अभी पूरी तरह से अहिंसक नहीं हुये थे, उन्होंने आन्दोलन वापस ले लिया। वास्तव में महात्मा गाँधी अहिंसात्मक राजनीतिक संस्कृति के पक्षधर थे। 1930 और 1932 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी इसी संस्कृति की अभिव्यक्ति थे।

गाँधी जी के आन्दोलनों का दूसरा पक्ष यह था कि वह समाज में किसी प्रकार का वर्ग संघर्ष नहीं चाहते थे। वह आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में एकीकरण और एकता समरसता के पक्षधर थे। 1923 से लेकर 1947 तक उनकी पूरी राजनीति इसी बात पर टिकी रही।

लेकिन हमें एक तथ्य यह भी स्वीकार करना होगा कि भारतीय सामाजिक, धार्मिक और संस्कृतिक अनेकता और द्वन्द से पीड़ित रहे हैं। इसका लाभ सत्ता पक्ष ने उठाया है। भारत का 1923 से 1947 तक का इतिहास द्वन्द और संघर्ष का इतिहास हैंजिसने अन्ततः भारत का विभाजन करा दिया। यद्यपि गाँधी वादी आन्दोलन ने भारतीयों में स्वराज और स्वतंत्रता की चेतना पैदा की और उनमें राष्ट्रीयता की भावना जन्मी लेकिन अखण्ड भारत के रूप में वे एक राष्ट्र की कल्पना को साकार नहीं कर सके। आन्दोलनों का नतीजा केवल यह निकला कि वे अब किसी भी तरह ब्रिटिश शासन को सहन करने के लिए तैयार नहीं थे।

3.10 राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में संवैधानिक विकास का महत्व

भारत में संवैधानिक विकास वास्तव में 1858 से आरम्भ होता है। 1857 के विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया था कि भारतीय एकाधिकारवादी सत्ता को अधिक सहन नहीं कर सकते थे। अंग्रेज भारतीयो की मनोवृत्ति को समझ रहे थे। भारतीय सत्ता में किसी न किसी रूप में भागीदारी चाहते थे। 1858 के अधिनियम ने ताज को सत्ता सौंप दी। एक भारतीय परिषद की स्थापना की गई। दोहरे शासन की व्यवस्था समाप्त कर दी गई। परन्तु स्थिति ज्यों की त्यों रही।

इधर भारत के नवयुवक अंग्रेजी उच्च शिक्षा की ओर आकर्षित हो रहे थे। अंग्रेजी साहित्य, दर्शन, मूल्यों और इतिहास का उन पर प्रभाव पडने लगा था। यद्यपि वे पूरी तरह ब्रिटिश शासन को एक वरदान समझते थे लेकिन भारतीय सत्ता मे वे भागीदारी चाहते थे। उनकी यह सोच इग्लैण्ड से प्रभावित एक नई राजनीतिक संस्कृति को जन्म दे रही थी। इसी नई सोच का नतीजा 1861 का भारतीय परिषद अधिनियम था।

3.11 भारतीय राजनीतिक संस्कृति का वर्तमान स्वरुप

भारत की राजनीतिक संस्कृति के सम्बन्ध में कुछ पश्चिमी लेखकों ने अपने विचार व्यक्त किये हैं जो बहस का विषय है। ऐसे विचारकों में माइरन बीवर और मारिस जोंस के नाम उल्लेखनीय है। भारत में स्वतंत्रता के बाद से लोगों का आधुनिकीकृत होना आरम्भ हो गया है। इनका अपना राजनीतिक ज्ञान अपने राजनीतिक विश्वास, अपनी राजनीतिक अभिवृतियॉ, राजनीतिक धारणाऐ, शासन के प्रति दृष्टिकोण इत्यादि हैं। यह राजनीतिक प्रक्रिया में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भागीदार हैं। इनकी राजनीतिक संस्कृति स्थानीय स्तर से विकसित होकर जिला स्तर की राजनीति और जिले से राज्य

स्तर की राजनीति में प्रवेश कर रही है। यह सारी प्रक्रिया कैसे चल रही है, किन चरणों से होकर गुजर रही हैं यह अध्ययन का विषय है।

3.12 भारतीय राजनीतिक संस्कृतियों की जटिलता

भारतीय राजनीतिक संस्कृतियां जटिल और अस्पष्ट है। इनके यर्थात को समझना कठिन है। भारत में सिद्धान्त में और व्यवहार में गहरा अंतर है। इसलिए राजनीति के केवल बाहरी रूप को देखकर वास्तविकता का पता लगाना कठिन है।

दूसरे भारत एक बहुलवादी देश है। यहां संस्कृतियों में गहरी असमान्ता हैंइसलिए राजनीतिक संस्कृतियों में भी असमानता और अस्पष्टता है। धार्मिक और भाषाई अंतर राजनीतिक संस्कृतियों को और उलझा देता है। जिसे समझना कठिन है। प्रादेशिक विभिन्नता अपना कार्य करती है। बिहार की और बंगाल की राजनीतिक संस्कृति गुजरात और महाराष्ट्र से भिन्न है। पहली वर्ग संघर्ष पर आधारित हैं तो दूसरी वर्ग सहयोग पर। इसलिए भारतीय राजनीतिक की एक पद्धति खोजना कठिन है।

तीसरे, लोंगों में आचरणों, व्यवहारों, मूल्यों और अभिवृत्तियों में गहरा अंतर है। महाराष्ट्र के लोंगों की सोच और तमिलनाडु के लोंगों की सोच में अंतर है। मॉरिस जोंस ने भारतीय राजनीतिक जीवन के तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, जिसको उसने भारतीय राजनीति के तीन मुहावरे कहा है। यह हैं आधुनिक (मार्डन), परम्परावादी (ट्रेडीशनल) और संतवादी (सेन्टली)। अर्थात भारत में तीन विचारो वाले लोग हैं- वे जो पश्चिमी की आधुनिकता से प्रभावित हैं। जो उदार है, धर्मनिरपेक्ष है, समान्ता और स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं। देश में तकनीकि विकास का वे कारण है। दूसरे वे लोग हैं जो परम्परावादी विचारों के पोशक है। यह जाति भेदभाव पर विश्वास रखते है। स्थानीय हितों को महत्व देते है। तीसरा वर्ग वह हैं जो निर्स्वाथ सेवा और आत्म-बलिदान में विश्वास रखता है। यह नैतिक साधनों को अपनाते है। इनके मूल्य ही आदर्श होते है। यह छिपकर काम करते है। राजनीतिक तौर पर महत्वकांक्षी नहीं होते।

3.13 भारतीय राजनीति संस्कृति और भारतीय संविधान

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भाषा और आचरण का वास्तव में निश्चयकरण भारतीय संविधान ने किया है। अर्थात भारतीय संविधान में निहित आदर्शो और सिद्धान्त भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के चरित्र का निर्माण करते है। संसदीय भाषा और विचार, उच्च प्रशासकीय पदाधिकारियों का दृष्टिकोण और प्रशासन का स्वरूप, राजनीतिक दलों का संगठन और उनके आचरण की सीमांए और

मीडिया या समाचार पत्रों की भाषा आदि तक राजनीतिक संस्कृति का नमूना पेश करते हैं। संविधान ने भारतीयो को विकसित देशों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है।

उधर संवैधानिक विशेषता के कारण न्यायपालिका की जो व्यवस्था हैंउसने राजनीति को आधुनिक और सुसंस्कृत करने का प्रयास किया है। न्यायपालिका की सक्रीयता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रत्येक क्षेत्र मे देखने को मिलती है। वास्तव में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय संविधान की व्याख्या करके राजनीतिक व्यवस्था को नियंत्रित करता है।

राज्य की नीति के निदेशक तत्व भारतीय संविधान की मूल भावना-लोकतंत्र, सामाजवाद और धर्मनिरपेक्षता का प्रतिपादान करवाते है। यह समानता की अवधारणा को साकार करते हैं।

संघात्मकता ने भारतीय राजनीति को विकेन्द्रीकृत किया है। वास्तव में संघात्मकता ने देश की विभिन्न राजनीतिक संस्कृतियों के मध्य एक ताल-मेल पैदा किया है। जिस से उत्तरदायित्व और समरसता की भावना बढ़ी है।

3.14 जनसाधारण की भूमिका

यहां जनसाधारण से अर्थ आम भारतीयों की आशाओं, अपेक्षाओं, संवेदनाओं, दृष्टिकोणों और अभिवृत्तियों से है। अर्थात सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के बारे मे वे क्या सोचते हैं और कैसा आचरण करते हैं। उदाहरण के लिये लोगों का यह विचार हैं कि उनके नेता भ्रष्ट है, लापरवाह हैं और अक्षम हैं, सरकारो में शासनीयता (गर्वनेंस) का आभाव हैं(जैसा कि 2 जनवरी 2011 को भारत के लगभग 20 प्रतिष्ठित उद्योग पतियों ने शासन की उदासीनता के सम्बन्ध में मंत्रियों को पत्र लिखा) सत्ताधारी जनता का पैसा लूटते हैं, करोड़ो रू0 के हार पहनते हैं और केवल अपने वर्ग को समर्पित हैं। लोगों की यह सोच कि नेता असुसंस्कृत, अशिक्षित और अपराधी है। संसद में उनका आचरण अशोभनीय और उनकी भाषा गैर संसदीय है। यह कि राजनीतिक दलों का आचरण, उनके हथकण्डे, उनकी तकनीकि लोकतंत्र के लिए एक खतरा हैं या उनका यह दृष्टिकोण कि उनका नेतृत्व माफियाओं, जमाखोरो, तस्करो इत्यादि के चंगुल में हैं। आम भारतीय की राजनीतिक संस्कृति को दर्शाता है । यह वह संस्कृति हैं जिसमें निराशा हैंऔर हताशा है।

परन्तु आम भारतीय संविधान और न्यायपालिका की सक्षमता ओर सूचना के अधिकार की उपयोगिता को स्वीकार करते है। इसलिए उनका मानना हैंकि भारत कमियों के बाद भी एक मजबूत शासन व्यवस्था वाला देश है। इसमें आघातों और दबावों का सामना करने की क्षमता है। इस तथ्य ने भारतीय राजनीतिक संस्कृति को सहभागीदारी का रूप दिया है।

3.15 अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति

अवधारणा के संदर्भ में भारतीय राजनीतिक संस्कृति भारतीय राजनीति की विवेचना से राजनीतिक संस्कृति के अवधारणात्मक संदर्भ में कुछ सामान्य तथ्य सामने आते है। जो इस प्रकार हैं-

1.राजनीतिक पद्धति और मुद्दों से सम्बन्धी त भारतीयों की अपनी अभिवृत्तियां है। उनमें कही न कही सामान्यता है। जैसे राष्ट्रीयता की भावना।

2.भारत में एक भावनात्मक पर्यायवरण है, जो राजनीतिक संस्कृति को निश्चित करता है। जैसे लोकतंत्र के प्रति आस्था।

3.भारतीय राजनीतिक संस्कृति के तीनों आधार हैं-ऐतिहासिक, भौगोलिक और सामाजिक। इस कारण यहां द्वन्द भी हैंऔर समरसता भी।

4.भारत में समय बदलने के साथ मूल्य और विश्वास भी बदले हैं। लोग राजनीति का अर्थ समझने लगे है। अर्थात राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण हुआ है।

5.भारतीय राजनीतिक संस्कृति ने बाधाओं के बाद भी राजनीतिक व्यवस्था को स्थायित्व दिया है। संसार भारतीय लोकतंत्र की प्रशंसा करता है।

6.राजनीतिक संस्कृति ने यद्यपि कही न कही आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर है।

7.भारतीय राजनीतिक संस्कृति लोकतंत्र, साम्राज्यवाद उदारवाद और धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा पर टिकी है। इसमें गांधीवादी विचारों का समावेश है।

8.भारतीय राजनीतिक संस्कृति में भागीदारों और अधीनस्थों की भूमिका है। इनमें भूमिकांए भी हैंऔर अभिकर्ता भी।

संक्षेप में अवधारणात्मक दृष्टि से भारत में एक राजनीतिक संस्कृति पनपी हैं यद्यपि वह जटिल है।

3.16 सारांश

राजनीतिक संस्कृति की अवधारणा ने आधुनिक राजनीति विज्ञान के अध्ययन में बहुत योगदान दिया है। इसने एक ऐसा उपकरण प्रदान किया हैं जो राजनीतिक विज्ञान की सूक्षक-वृहद (माइक्रो-मैक्रो) खाई को पाटने में सफल है । इस अवधारणा से सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन किया जाना सम्भव हुआ है। राजनीतिक शास्त्री अब सामाजिक और संस्कृतिक शक्तियों का अध्ययन करके राजनीतिक संस्कृति को पहचानेगा। यहां व्यक्ति की तार्किक और अतार्किक सभी बातों का अध्ययन किया

जायेगा। परन्तु इसका अनुदार और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण राजनीतिक संस्कृति को उलझा देता है। यह अवधारणा अस्पष्ट और भटकी हुई है।

भारतीयों की राजनीतिक संस्कृति के निर्माण में उपनिवेशवादी व्यवस्था, राजनीतिक एकाधिकारवाद, जातिय दंभ और असमानता, अन्याय और दमन का बड़ा हाथ है। 1857 के विद्रोह से लेकर 1886 तक की कहानी यही है। 1885 में कांग्रेस के रूप में उदारवादी और 1900 में इसी दल में उग्रवादी चेतना ने राजनीतिक संस्कृति को पनपने में बड़ा योगदान दिया। बंगाल विभाजन के परिणाम स्वरूप 1905 की राजनीति ने देश में उग्र राष्ट्रवाद के जन्म दिया। लेकिन गाँधी वादी आन्दोलनों ने भारतीयों को शान्तिमय तंरगों की ओर मोड़ दिया। यह एक अद्वितीय अनुभव था। 1923 के बाद से भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता ने खुलकर खेल खेला। जिसका परिणाम भारत के विभाजन के रूप में निकला।

राजनीतिक व्यवस्था में भागीदारी औेर इसके प्रति जागरूकता राजनीतिक संस्कृति का लौकिकीकरण (सैक्यूलराइजेशन) है। राजनीतिक संस्कृति के लौकिकीकरण से राजनीतिक स्थायित्व आता है। राजनीतिक विकास और आधुनिकीकरण राजनीतिक संस्कृति का परिणाम है। राजनीतिक विकास के दो पहलू हैं-अनुदार और प्रगतिशील। पहला क्रान्ति का विरोधी हैं दूसरा विकास का समर्थक।

राजनीतिक संस्कृति के अध्ययन में विचारधारा का बहुत महत्व है। विचारधारा राजनीतिक मूल्यों के प्रति लोंगों के आचरण का निर्माण करती है। विचारधारा कठोर और लचीले दो रूप की है। विचाराधारा विकासवादी परिवर्तन और क्रान्ति दोनों का कारण बन सकती है।

राजनीतिक संस्कृति के अन्तर्गत राजनीतिक पद्धति के अध्ययन में परिवारों, मतदाताओं, गुटों की शक्तियों तथा प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। राजनीतिक संस्कृति के दो भाग है- सक्रीय और निष्क्रिय । राजनीतिक संस्कृति और राजनीतिक संरचना एक दूसरे को प्रभावित करते है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक व्यवस्था भूमिकाओं की एक संरचना है। इसमें भागीदार अभिकर्ता है। राजनीतिक संस्कृति को चार भागो में बांटा जा सकता है। संर्कीण राजनीतिक संस्कृति, अधीनस्थ राजनीतिक संस्कृति तथा भागीदार राजनीतिक संस्कृति। आमण्ड के अनुसार एंग्लो-अमेरिकी व्यवस्था, महाद्विपीय यूरोपीय राजनीतिक व्यवस्था तथा पूर्व औद्योगिक राजनीतिक व्यवस्था। कुल मिलाकर यह कह जा सकता हैं कि राजनीतिक संस्कृति की एक अवधारणा एक उपकरण हैं जिसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था को समझा जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1.________ के अध्ययन में राजनीति और सरकार पर बुनियादी, सामान्य मूल्यों की तलाश की जाती है।

3.17 शब्दावली

1. इलीट्स (अभिजात वर्ग): यह वर्ग जो शिक्षित है, धनी हैं और सजग है।

2.पैटर्न (पद्धति): किसी घटना का एक ऐसा सिलसिला जो उसके एक निश्चित चरित्र का निर्माण करता है।

3. हेटरोजीनस (विजातियता) किसी समाज या राज्य में विभिन्न भाषाई, संस्कृतिक और सामाजिक समूह।

4. होमोजीनस (सजातियता) किसी समाज का आधार एक ही भाषाई, संस्कृतिक औरसामाजिक समूह होना।

5. माइगरेशन (प्रवास) किसी नगर या देश से लोंगों दूसरे नगरों या देशों में जाना।

6. इमीग्रेशन (उत्प्राव) बाहर के लोंगों का रोजगार की तलाश में आना।

7. एटीटयूड (अभिवृतियॉ) किसी या घटना के प्रति रूझान या सोच।

3 .19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. राजनीतिक संस्कृति

3 .20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 दूबे: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

2. एस0एम0सईद0: भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

3. जाक़िर हुसैन : राजनीतिक सिद्धान्त

3 .21 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

3 .22 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत मे राजनीतिक संस्कृति के विविध पक्षों की विवेचना कीजिये।

इकाई : 4 भारत में दलीय राजनीति

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल

4.3 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल

4.4 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं

4.4.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार

4.4.2 राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व

4.4.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7अभ्याश प्रश्नों के उत्तर

4.8संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

व्यवस्थापिका कार्यपालिका में संबंध के आधार पर संसदीय प्रणाली , शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है । यहाँ हम भारत का अध्ययन कर रहे हैं ,भारत की दलीय प्रणाली की बात करना चाहते है । इसलिए भारत में किस प्रकार की दलीय प्रणाली अपनाई गयी है सबसे पहले उसका जिक्र करना है । भारत में लोकतंत्र की स्थापना की गयी है और उसके प्रकार के रूप में देखा जाए तो संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की गयी है । हम जानते हैं की आप सभी अपनी पूर्व की कक्षा में पढ़ चुके हैं की संसदीय शासन प्रणाली की मुख्य विशेषता व्यवस्थापिका और कार्यपालिका का घनिष्ठ सम्बन्ध अर्थात कार्यपालिका का गठन व्यवस्था के सदस्यों से ही होता है । दूसरी प्रमुख विशेषता है की यहाँ नाम मात्र की कार्यपालिका और वास्तविक कार्यपालिका में भेद पाया जाता है। भारतीय संविधान में अनुच्छेद 75 (3) में स्पष्ट उल्लेख है की मंत्रिपरिषद जिसे कार्यपालिका कहते हैं यह सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है।

जैसा की स्पष्ट है की भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गयी है। संसदीय शासन प्रणाली को प्रतिनिधि शासन प्रणाली भी कहते हैं। अर्थात इसमें शासन जनता के प्रतिनिधि के द्वारा किया जाता है और यह सीधे जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. भारत में शासन के प्रमुख रूप के बारे में जान सकेंगे ।
2. भारत में लोकतंत्र में दलीय प्रणाली के बारे में अध्ययन कर सकेंगे ।
3. स्वतंत्रता के पूर्व व स्वतंत्रता के बाद के दल और उसकी कार्यशैली के बारे में जान सकेंगे ।

4.2 प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल

यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है की प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालन में राजनीतिक दलों की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है क्योंकि लोकतंत्र को व्यवहारिक धरातल पर उतारने के लिए यह आवश्यक है कि चुनाव एक निश्चित समय पर चुनाव हों, सभी नागरिकों को मत का अधिकार तथा चुनाव की प्रक्रिया में नागरिकों को अनेक विकल्प उपलब्ध हैं। विकल्पों की उपलब्धता जिसमें अपनी पसंद के विकल्प के रूप में प्रत्याशी को मत देकर विजयी बनाया जा सके। इसलिए यहाँ पर यह उल्लेखनीय है की संसदीय लोकतंत्र के संचालन में इस प्रक्रिया को आगे बढाने के लिए विकल्पों के रूप में राजनीतिक दलों की उपस्थिति होती है। राजनीतिक दल ही अपनी प्राथमिकताओं अपने मूल्यों और सिद्धांतों के आधार पर जनता से समर्थन मांगते हैं। उसके आधार पर जनता प्रत्याशियों को मतदान करने या न करने का या किसे करना है निर्णय लेते हुए मतदान करते हैं और अपने प्रतिनिधि का चुनाव करते हैं।

इस प्रकार से प्रतिनिधि लोकतंत्र के संचालन, उत्तरदायी लोकतंत्र के संचालन में संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण और अनिवार्य भूमिका है।

क्योंकि अलग-अलग देशों की सामजिक संरचना और सांस्कृतिक परम्पराएं अलग-अलग होती हैं इसलिए राजनीतिक दलों की संरचना उनकी कार्यप्रणाली उनकी प्राथमिकताएं उनके आदर्श उनके गंतव्य, उनके लाभ इनमें भी भिन्नता पायी जाती है। कई बार दो अलग-अलग, दो या दो से अधिक अलग-अलग देशों में कितनी प्रकार की शासन प्रणाली अपनाई जाती है। सामाजिक सांस्कृतिक संरचना में भिन्नता के कारण राजनीतिक दलों की संरचना और कार्यप्रणाली में भी भिन्नता दिखाई देती है और यह बात भारत के भी सन्दर्भ में लागू है। भारत में राजनीतिक दालों के उद्भव के विषय को ध्यान में रखकर बात करें इसको हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं- स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व के राजनीतिक दल। दूसरा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के राजनीतिक दल।

4.3 स्वतंत्रता पूर्व के राजनीतिक दल

इस इकाई के अध्ययन में हम देखेंगे की किस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दलों का उद्भव हुआ और तात्कालिक परिस्थिति में अर्थात साम्राज्य काल में राजनीतिक दलों की प्राथमिकताओं और मूल्यों के आधार पर काम किया तथा स्वतंत्रता के बाद अभी तक जो राजनीतिक दल हैं और जो नए राजनीतिक दल बने वह किन मूल्यों और आदर्शों को लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, एक नयी प्रकार की दलीय प्रणाली के निर्माण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

भारत में दल प्रणाली के उद्भव में 1885 में कांग्रेस की स्थापना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कांग्रेस की स्थापना के उद्देश्य में काफी अस्पष्टता है क्योंकि इसकी स्थापना एक ब्रिटिश अधिकारी ए. ओ.

ह्युम ने की। जिसका उद्देश्य ऐसे संगठन की स्थापना करना था जो ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सेफ्टी वाल्व का कार्य कर सके।

परंतु समय के साथ यह कांग्रेस देश की स्वतंत्रता आंदोलन का वाहक और मंच बना, जहाँ सभी जाति,धर्म,भाषा क्षेत्र के लोग जो भारत में निवास करते थे अपनी भिन्नता के बावजूद एक मुख्य लक्ष्य अर्थात स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर के आगे बढ़े। इसलिए कांग्रेस का विकास एक राष्ट्रीय मंच के रूप में होने लगा।

जब स्वतंत्रता प्राप्त हुई उस समय गाधीजी ने इसे समाप्त करने की बात की लेकिन उनके स्वयं के साथी इस बात को इनकार करते हुए सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को शामिल करना तत्कालीन नेतृत्व ने उचित समझा और उसी के अनुरूप कार्य किया। जैसा कि हम सभी अवगत है कांग्रेस स्वतंत्रता आदोलन का एक मंच है इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरंत बाद के चुनाव में कांग्रेस को लगातार बढ़त प्राप्त होती रही, क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों के पीढ़ी इस बात से अवगत थी कि जिन उद्देश्यों और आकांक्षाओं को लेकर कांग्रेस के ध्वज तले स्वतंत्रता आंदोलन की लड़ाई लड़ी गई उन आकांक्षाओं की पूर्ति में निश्चित रूप से यह दल प्राथमिकता के आधार पर कार्य करेगा। इसलिए 1952 के लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 तक कांग्रेस बहुत ही प्रभावशाली स्थिति में रही परन्तु 1967 में विधानसभा चुनाव में कई राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन सरकारों का गठन हुआ और सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में कांग्रेस को चुनौती मिलने लगी।

इसी के साथ देश स्वतंत्रता के पूर्व 1906 मुस्लिम लीग 1916 में हिंदू महासभा का गठन हुआ। जहाँ मुस्लिम भारत की स्वतंत्रता के साथ पाकिस्तान की मांग को आगे बढ़ाने के लिए कार्य कर रहा था वही हिंदू महासभा हिंदू समाज और संस्कृति को सुरक्षा प्रदान करने और हिंदू राष्ट्र की स्थापना के संकल्प के साथ आगे कार्य जारी रखा। इसके साथ ही देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय दलों का उद्भव हुआ जिसने अपने अपने क्षेत्र में अल्पकालिक और महत्वपूर्ण राजनीतिक बदलाव की दिशा में कार्य किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व जो एक अन्य महत्वपूर्ण दल था जिसकी स्थापना 1924 में हुई वह साम्यवादी दल है। गांधी जी के कहने के बाद भी उनके उत्तराधिकारी ने कांग्रेस को विघटित नहीं किया और स्वतंत्रता आंदोलन के मंच के रूप में कार्य करने वाले कांग्रेसी ने सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में अपने आप को शामिल करते हुए एक राजनीतिक दल के रूप में कार्य करना प्रारंभ किया।

4.4 स्वतंत्रता के पश्चात के राजनीतिक दल और उनकी विशेषताएं

उक्त के साथ स्वतंत्रता के पश्चात राजनीतिक दल का गठन हुआ 1953 में जिसका नाम भारतीय जनसंघ तथा 1959 में स्वतंत्र पार्टी का गठन हुआ। इस प्रकार से स्वतंत्रता के पूर्व राजनीतिक दल की स्थापना हुई राजनीतिक दल के रूप में भारत को स्वतंत्र कराना परंतु स्वतंत्रता के पश्चात यही राजनीतिक दल अब अपनी प्राथमिकताओं के साथ चुनाव प्रक्रिया में शामिल होने वाले थे। और इन सबकी सामूहिक गतिविधि से भारत में दलीय प्रणाली का विकास हो रहा है। यद्यपि स्वतंत्रता के तुरंत बाद के समय में कांग्रेस महत्वपूर्ण और प्रभावशाली स्थिति में रही। जब बाकी दल विशेष प्रभाव नहीं रखते थे क्योंकि जैसा कि हमने पूर्व में अध्ययन किया है कि क्योंकि राष्ट्रीय कांग्रेस स्वतंत्रता आन्दोलन का राष्ट्रीय मंच था इसलिए जनता के विश्वास का भी प्रतीक था। फलस्वरूप स्वतंत्रता के पश्चात के दिनों में कांग्रेस को देश के जनमानस की पहली पसंद होने का अवसर प्राप्त हुआ पर 1967 के बाद के चुनाव में देश में बहुत से बदलाव दिखाई देते हैं। यह सभी मिलकर के देश की दलीय प्रणाली को एक रूप देने में अपना योगदान देते हैं और इस दलीय प्रणाली जो भारत में स्वतंत्रता के बाद के दिनों में संसदीय शासन प्रणाली के संचालन करते हुए विकसित हुई है,उसकी निम्नलिखित विशेषताए हैं -

4.4.1 राजनीतिक दल का संगठन और उसको संचालित करने का मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान में भाग 3 में मौलिक अधिकार का प्रावधान किया गया जिसमें वर्तमान समय में छह मौलिक अधिकार इनमें स्वतंत्रता के अधिकार का प्रावधान अनुच्छेद 19 से 22 तक किया गया है। अनुच्छेद 19 प्रत्येक भारतीय नागरिक को संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता प्रदान करता है इस अधिकार का प्रयोग करते हुए देश के किसी भी नागरिक को राजनीतिक दल के संगठन और उस को संचालित करने का अधिकार प्राप्त है। यहां यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है की इस प्रकार के अधिकार लोकतांत्रिक देश में ही पाए जाते हैं किसी सर्वाधिकारवादी देश में या साम्यवादी देश में नहीं पाए जाते हैं।

4.4.2. राजनीतिक दलों की बहुलता के साथ एक दलीय प्रभुत्व

क्योंकि भारत में सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषा, क्षेत्र, धर्म, निवास, स्थान आदि को ले करके भिन्नता पाई जाती है। इन हितों के प्रतिनिधित्व करने वाले देश में बहुत से दलों का विकास हुआ जहाँ देश में आज पंजीकृत राजनीतिक दलों की संख्या 500 से अधिक है लेकिन जैसा कि प्रारंभ में हमने यह देखा है यह अध्ययन किया है की स्वतंत्रता के उपरांत यदि आज तक के इतिहास को देखा जाए तो हम पाते है कि देश में राजनीतिक दलों की तो बहुलता है। परन्तु प्रभुत्व प्रायः एक दल का ही

दिखाई देता है क्योंकि स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम लोकसभा चुनाव से लेकर 1967 के लोकसभा चुनाव तक कांग्रेस का वर्चस्व दिखाई देता है। 1967 के विधानसभा चुनाव में कुछ राज्यों में गैर कांग्रेसी गठबंधन की सरकारों का गठन हुआ। कांग्रेस को क्षेत्रीय दलों से चुनौती मिली लेकिन 1971 के चुनाव में कांग्रेस बहुमत प्राप्त की। यद्यपि 1977 के चुनाव में कांग्रेस को भारी हार का सामना करना पड़ा और जनता पार्टी को विजय प्राप्त हुई लेकिन 1980 के चुनाव में कांग्रेस मजबूती के साथ आगे बड़ी । इसी प्रकार 1984 के चुनाव में इंदिरा गांधी की हत्या के पश्चात हुआ था इसमें कांग्रेस को बड़े पैमाने पर जीत दर्ज हुई और विपक्ष बहुत कमजोर होता हुआ दिखाई दिया। 1989 में कांग्रेस ने चुनाव लड़ा उसे बढ़त प्राप्त हुई और कांग्रेस प्रमुख मजबूत विपक्ष के रूप में अस्तित्व में आया लेकिन पुनः 1991 के चुनाव में और बाद के चुनाव में लगातार गठबंधन की सरकारें बनी और एन.डी.ए की सरकारों को छोड़ दिया जाए तो सभी चुनाव में कांग्रेस प्रभावशाली स्थिति में रही। अब विपक्ष बहुत मजबूत स्थिति में नहीं रहा इस प्रकार से दिखाई देता है। राष्ट्रीय राजनीति विपक्ष के प्रभाव काफी सीमित दिखाई देते हैं और वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व को काफी बढ़त हासिल हुई जिसमें भारतीय जनता पार्टी प्रमुख भूमिका में दिखाई देती है इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर वर्तमान समय तक पूरी भारतीय चुनाव प्रणाली में दिखाई देता है कि देश के विभिन्न हिस्सों में क्षेत्रीय आधार पर राजनीतिक दल तो बहुत बड़े पैमाने पर उभरे लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो सामान्यतया वह राष्ट्रीय राजनीति में बहुत प्रभावशाली स्थिति में नहीं दिखाई देते और एक दल ही महत्वपूर्ण स्थिति में दिखाई देता है।

4.4.3 प्रभावशाली विपक्ष का ना होना

स्वतंत्रता के पश्चात प्रथम आम चुनाव से लेकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में चुनाव प्रक्रिया को देखते हैं तो एक बात स्पष्ट दिखाई देती है कि देश में प्रायः मजबूत विपक्ष नहीं दिखाई देता है। किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था के संचालन के लिए सशक्त मजबूत और रचनात्मक विपक्ष होना आवश्यक है क्योंकि वह सरकार को सचेत करता है और जनमानस की आवाज को सरकार तक पहुंचाने का कार्य करता है। चुनाव परिणाम की दृष्टि से देखा जाए तो प्रथम आम चुनाव 1952 से लेकर 1984 तक कांग्रेस महत्वपूर्ण स्थिति में रही है और उसे लोकसभा में 50% से अधिक स्थान प्राप्त हुए, अपवाद के रूप में केवल 1977 के चुनाव में जनता पार्टी को लोकसभा में मिले स्थान को रखा जा सकता है जिसमें उसने बहुमत के आधार पर सरकार का गठन किया।यद्यपि उस सरकार को 80 के चुनाव में पराजय का सामना करना पड़ा इसलिए इसके आगे भी जब देखें तो 1980 और 1984 के चुनाव में भी कांग्रेस मजबूत स्थिति में रही।आगे 1989 के चुनाव में गठबंधन की सरकार बनी क्योंकि किसी पार्टी को बहुमत प्राप्त नहीं हुआ था क्योंकि भारत में विविधता है विविधता के कारण समय के साथ देश में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का उदय हुआ जिसकी वजह से चुनाव में

खंडित जनादेश प्राप्त हुए। किसी भी राजनीतिक दल को बहुमत नहीं प्राप्त हुआ जिससे एक गठबंधन की सरकार बनी इसके बाद भी 1991 के चुनाव में भी कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी रही लेकिन गठबंधन की ही सरकार बनी । बाद के दिनों में भी गठबंधन की सरकार और अस्थिर सरकार दिखाई देती है क्योंकि क्षेत्रीय राजनीतिक दल अपनी क्षेत्रीय आकांक्षाओं और उनके नेताओं की व्यक्तिगत आकाक्षाओं के तहत गठबंधन में शामिल होकर सरकार बनाने का कार्य कर रहे थे लेकिन उनकी आकांक्षाएं तुष्ट ना होने की स्थिति में सरकार गिराने का भी कार्य कर रहे थे। यह सिलसिला 1999 तक बडी तीव्र गति से चला परंतु 1999 के चुनाव में एन.डी.ए. कि सरकार भाजपा के नेतृत्व में बनी जिसने अपने 5 वर्ष के कार्यकाल को पूरा किया बावजूद इसके विपक्ष की संख्या तो काफी थी लेकिन विपक्ष की एकजुटता न होने की वजह से एक मजबूत विपक्ष का उदय नहीं हो पाया। उसके पश्चात 2004 और 2009 के चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व में यूपीए की सरकार बनी जिसने अपने कार्यकाल को पूर्ण किया परंतु एक राजनीतिक दल के रूप में तो सत्ता पक्ष में कोई बहुमत की स्थिति में नहीं था। विपक्ष के रूप में कोई ऐसा राजनीतिक दल नहीं था जो सत्ता पक्ष पर निर्णायक दबाव और प्रभाव बनाने की स्थिति में रहे । यद्यपि 2004 से 2014 तक भारतीय जनता पार्टी ने विपक्ष के रूप में काफी सक्रिय भूमिका अदा करते हुए दिखाई देती है और 2014 के चुनाव में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में गठबंधन की सरकार बनी साथ ही इसमें अभी महत्वपूर्ण बात हुई की इस गठबंधन की सरकार में भारतीय जनता पार्टी एक राजनीतिक दल के रूप में स्वयं में बहुमत प्राप्त दल था । इसलिए एक मजबूत सरकार का गठन हुआ लेकिन विपक्ष की स्थिति पुनः हाशिए पर ही रही क्योंकि जहां विपक्ष संख्या बल में कम था वहीं विपक्ष अपनी नीतियों कार्यक्रमों और अपनी प्राथमिकताओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। राष्ट्रीय रुझानों को लेकर के स्पष्ट नहीं था ,राष्ट्र की आकांक्षाओं को लेकर के स्पष्ट नहीं था। कई बार तो विपक्ष के कुछ दलों के द्वारा ऐसे व्यवहार टिप्पणियां करते हुए देखी गई जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा और राष्ट्रीय एकता जैसे गंभीर विषयों की अनदेखी करते हुए भी दिखाई दिए। इसलिए जनता के सरोकारों से विपक्ष मजबूती से जुड़ने में असफल रहा । इसलिए यह कहा जा सकता है की आजादी के बाद अभी तक देश में एक मजबूत सशक्त राष्ट्रीय और विकास के सरोकारों से युक्त विपक्ष नहीं दिखाई दिया है खास तौर से यह बात गठबंधन के दौर में और निश्चित रूप से कही जा सकती है क्योंकि वर्तमान समय में यह स्पष्ट है कि किसी एक दल का प्रभुत्व भारतीय राजनीति में नहीं कहा जा सकता है । यद्यपि पिछले दो आम चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने राजनीतिक दल के रूप में बहुमत प्राप्त किया है लेकिन गठबंधन की सरकार बनाने का कार्य किया है क्योंकि चुनाव पूर्व का गठबंधन पूरी लोकतांत्रिक प्रक्रिया में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

4.5.4 दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में

अभी ऊपर के अध्ययन में हमने देखा है कि भारत में अभी दलीय प्रणाली निर्माण की प्रक्रिया में है क्योंकि स्वतंत्रता के पूर्व जो कांग्रेस आजादी की लड़ाई के एक मंच था वह प्रथम आम चुनाव 1952

से एक राजनीतिक दल के रूप में सत्ता संघर्ष की प्रक्रिया में शामिल होता है जिसमें कई दल उसके अंदर भी है और अन्य दल भी उसके विरोधी दल के रूप में भी चुनाव लड़ कर के सामने आते हैं, क्योंकि कांग्रेस के साथ जनता की भावनाएं जुड़ी हुई थी क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन में कांग्रेस का इतिहास था अपना योगदान था लेकिन धीरे-धीरे स्वतंत्रता के पश्चात जनता की आकांक्षा और अपेक्षाओं में उस हद तक पूर्ति ना होना जो अपेक्षित थी, ऐसे में क्षेत्रीय स्तर पर बहुत से दलों का भाषा धर्म क्षेत्र आदि के आधार पर विकास हुआ। जिसने सर्वप्रथम राज्य के स्तर पर गठबंधन की सरकार के निर्माण का कार्य किया जिसे 1967 के राज्यों के विधानसभा के चुनाव में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है आगे 1977, 1989, 1991, 1996, 1998, 1999, 2004, 2009, 2014 और 2019 में गठबंधन की सरकार बनती हुई दिखाई देती है ।जिसमें दिखाई देता है कि समय के सापेक्ष वह कांग्रेस का, जिसने लंबे समय तक सत्ता में प्रत्यक्ष रुप से नेतृत्व किया और कुछ समय गठबंधन के आधार पर सरकार चलाया तथा बाहर से भी समर्थन देकर कि सरकार बनाने का कार्य किया। कांग्रेस राजनीतिक चुनाव में काफी पीछे दिखाई देती है सफलता के मामले में परंतु नई राजनीतिक शक्ति के रूप में भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का उद्भव होता है स्वतंत्रता के बाद बनने वाली राजनीतिक पार्टियों में प्रमुख थी जिसने राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रीय सुरक्षा तथा विकास और सांस्कृतिक अस्मिता को लेकर के आगे बढ़ने का कार्य किया ।जिसे जनता के समर्थन से वर्तमान समय में राजनीतिक सफलता प्राप्त हुई इस प्रकार से दिखाई देता है कि देश में जहां राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल दिखाई देते हैं जिनमें से कुछ राष्ट्रीय और क्षेत्रीय आकांक्षाओं के लिए जीते हुए दिखाई दे रहा है तो कुछ राष्ट्रीय आकांक्षाओं और एकीकरण को प्राथमिकता के आधार पर आगे बढ़ने का कार्य कर रहे हैं साथ ही क्षेत्रीय आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिए भाषा धर्म और क्षेत्र के आधार पर राजनीतिक दलों का उदय हो रहा है ।समय-समय पर इन राजनीतिक दलों की एक विशेषता यह भी है कि यह व्यक्ति आधारित और परिवार आधारित दल के रूप में दिखाई देते हैं इसलिए उनकी कार्यशैली में क्षेत्रीय आकांक्षाओं को संतुष्ट करने की प्रवृत्ति भी कम ही दिखाई देती है राजनीतिक सफलता और व्यक्तिगत उपलब्धियों की प्राथमिकता अधिक दिखाई देती है। फिर भी कहा जा सकता है कि भारत में लोकतंत्र बहुत ही मजबूत स्थिति में आगे बढ़ रहा है परंतु यहां पर दलीय प्रणाली अभी विकास की और निर्माण की स्थिति में है।

4.5.5 राजनीतिक अस्थिरता

क्योंकि हमने ऊपर के अध्ययन में देखा की 1967 में राज्यों के चुनाव में कई राज्य में गठबंधन की सरकार बनी तथा 1977, 1989, 1991, 1996 और अभी तक 2019 तक गठबंधन की सरकार बन रही है। 1999 से अभी तक जो गठबंधन की सरकारें हैं उन्होंने काफी हद तक राष्ट्रीय स्तर की

सरकार में स्थिरता प्रदान करने का कार्य किया है परंतु गठबंधन की सरकार होने के कारण कई बार मजबूत फैसले लेने से पीछे रह गये। वर्तमान समय में 2014 और 2019 के चुनाव में जो गठबंधन सरकार है उसकी प्रकृति में परिवर्तन है क्योंकि उसकी प्रवृत्ति भिन्न है क्योंकि गठबंधन की सरकार होने के साथ उसमें एक पार्टी का स्वयं में बहुमत भी है ।इसलिए मजबूत और कड़े फैसले देश के हित में लिए जाने आसान है ।शायद इसीलिए राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में अनुच्छेद 370 की समाप्ति और राष्ट्रीय एकीकरण के साथ सामाजिक एकीकरण और न्याय की दिशा में 35A जैसे प्रावधानों को समाप्त कर बहुत बड़े कार्य किया गया। क्योंकि क्षेत्रीय दल जो इस गठबंधन में है वह उस तरह की सौदेबाजी करने की स्थिति में नहीं है जिस प्रकार की सौदेबाजी उस समय होते थे, जब सरकार में गठबंधन सरकार में सबसे बड़ी पार्टी को बहुमत की स्थिति ना हो।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में निम्नलिखित में से कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

A. संसदीय B. अध्यक्षीय C. दोनों D. इनमें से कोई नहीं

2. भारत में राष्ट्रपति संसद के अंग है ।सत्य /असत्य

4.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन में यह पाया है की भारत में संसदीय शासन प्रणाली अपनाई गई है ।इसके संचालन में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण स्थान है। क्यों की इस शासन प्रणाली में निश्चित अवधि पर जनता अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है । इस निर्वाचन की प्रक्रिया में जनता के विकल्प के रूप में राजनीतिक दल अपने नीतियों और कार्यक्रमों को लेकर आते हैं इसी के आधार पर जनता अलग अलग राजनीतिक दलों को उनके नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर पर समर्थन करते हुए मतदान करते है।

इस आधार पर भारत में निम्न सदन में बहुमत प्राप्त दल को सरकार बनाने का संवैधानिक अधिकार है ।भारत में स्वतंत्रता के पूर्व और सवतंत्रता के बाद राजनीतिक दलों के उद्भव और उनके विकास का अध्ययन इस इकाई में किया है जिसमें यह पाया है की स्वतंत्रतापूर्व भारत में कांग्रेस एक मंच था, जिसमें मतभेदों के बाद भी एक सामान्य उद्देश्य के लिए सभी साथ थे। वह सामान्य उद्देश था स्वतंत्रता की प्राप्ति ।परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात कांग्रेस सत्ता प्राप्ति की प्रक्रिया में हिस्सा लेने वाला राजनीतिक दल के रूप में आगे आया है। साथ ही अन्य दलों का भी उद्भव हुआ, जिसमें जनसंघ प्रमुख है। अपने उद्भव के समय से ही सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राष्ट्रीय एकीकरण जैसी प्राथमिकताएं रही। इस दो मुख्य राजनीतिक दलों ने देश की दलीय पद्धति के विकास और

निर्माण में अपने अपने योगदान दिए हैं। यहाँ उल्लेखनीय है अध्ययन में यह बात भी आई की स्वतंत्रता के बाद 1967 तक राष्ट्रीय आन्दोलन के मंच के रूप में कार्य करने के कारण कांग्रेस के साथ जनसामान्य जुडा रहा। परन्तु धीरे धीरे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की प्राथमिकताओं की सिद्धी में उतनी सफलता नहीं मिली जितनी जन अपेक्षित थी। अतः 1967 में पहली बार 8 राज्यों में गैर कांग्रेसी सरकार का गठन हुआ ।यदपि बाद के अनुभवों में यह पाया गया की ये या इस प्रकार की दूसरी सरकारें अपना सफल आयोजन नहीं कर सकी। परन्तु राष्ट्रीय राजनीति में वर्तमान रूझान बदल रहे है बहुदलीय राजनीतिक दलों के स्थान पर गठबंधन आधारित द्विध्रुवीय दलीय प्रणाली की तरफ देश बढ़ रहा है। साथ ही पिछले दो आम चुनाव में गठबंधन सरकार के संगठन और प्रकृति में बदलाव दिखाई देता है। वह यह की दोनों बार गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत भी है। ऐसी स्थिति राष्ट्रीय सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लते हुए सरकार दिखाई दी है। इस आधार पर कह सकते हैं की भारत में विकसित हो रही दलीय प्रणाली जिसमें गठबंधन सरकार का बनना विविधता को साकार कर रहा है, तो यह कमजोरी न बन जाए इसके निराकरण के लिए जनता ने उसी गठबंधन में एक राजनीतिक दल को बहुमत देकर राष्ट्रीय और सामाजिक सरोकारों से युक्त मजबूत फैसले लेने की सामर्थ्य भी सरकार को दिया है। निश्चित रूप से यह विविधतायुक्त किसी राष्ट्र के लिए अनुकरणीय और स्वयं भारत के लोकतंत्र के लिए शुभता की तरफ बढ़ते हुए कदम केरूप में देखा जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में दलीय व्यवस्था किस प्रकार की है?
2. किसी राजनीतिक दल को राष्ट्रीय दल अथवा प्रादेशिक दल के रूप में मान्यता कौन देता है?
3. भारत में कोई भी राजनीतिक दल राष्ट्रीय दल के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकता है, यदि वह राज्य स्तर का दल है, कम से कम -

4.7 शब्दावली

4. प्रतिनिधि शासन - ऐसी शासन प्रणाली जिसमें शासन के संचालन की जिम्मेदारी जनता के. प्रतिनिधियों के पास होती हैं।
5. संसद-भारत में संसद राष्ट्रपति, राज्यसभा और लोकसभा से मिलकर बनती है। जिसका उल्लेख भारतीय संविधान के अनुच्छेद 79 में किया गया है।

6. विपक्ष दल - विपक्षी दल का अर्थ है वह दल, जो सदन में सत्तारूढ़ दल के बाद संख्या में दूसरे स्थान पर हो।

4.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बहुदलीय , 2. निर्वाचन आयोग ,3. चार राज्यों में

4.9संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु

2. राजनीति चिंतन की रूपरेख - ओ.पी. गाबा

3. संपादक- राजकिशोर भारत का राजनीतिक संकट

4. सुभाष कश्यप हमारी संसद

5. सुभाष कश्यप हमारा संविधान

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल- हमारी न्यायपलिका

2. एस. एम. सईद भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

4 .11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में दलीय प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
2. प्रतिनिधि लोकतंत्र में राजनीतिक दल के महत्व पर चर्चा कीजिये।

इकाई-5 निर्वाचन आयोग संरचना, कार्य, भूमिका

5 .1 प्रस्तावना

5 .2 उद्देश्य

5 .3 भारत में निर्वाचन आयोग

5 .3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य

5 .3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां

5 .3.3 समयानुसार सख़्त होता चुनाव आयोग

5 .4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति

5 .4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार

5 .5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल

5 .6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास

5 .7 सारांश

5 .8 शब्दावली

5 .9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5 .10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5 .11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

5 .12 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

निर्वाचन आयोग अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिये बदलते समाज, राजसत्ता तथा प्रौद्योगिकी के अनुसार तेजी से अपने आप को ढाल रहा है। भारतीय राजनीति जो अपनी सीमाओं से बाहर होते जा रही थी उस पर निर्वाचन आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए नियंत्रण लगाने का सफल प्रयास किया है। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हुए निर्वाचन आयोग ने भारतीय राजनीति में लोकतांत्रिक व्यवस्था की उत्तरोत्तर मजबूती का साक्ष्य दिया है।

भारतीय चुनाव आयोग एक स्वायत्त एंव अर्ध न्यायिक संस्थान है। जिसका गठन भारत में स्वतंत्र व निष्पक्ष रूप से विभिन्न राज्यों भारत के प्रतिनिधिक संस्थानों में प्रतिनिधि चुनने की प्रक्रिया को सुचारू रूप से संचालित कराने के लिये किया गया। भारतीय चुनाव आयोग की स्थापना 25 जनवरी 1950 को की गयी। आयोग में वर्तमान में एक मुख्य चुनाव आयुक्त व दो चुनाव आयुक्त होते हैं। 1950 में जब निर्वाचन आयोग का गठन किया गया तब यह केवल एकल सदस्यीय निकाय था। 25 जनवरी 1950 से 2 अक्टूबर 1989 तक यह केवल एक सदस्यीय निकाय के रूप में कार्य करता रहा। 3 अक्टूबर 1989 से 1 जनवरी 1990 तक यह आर.वी.एस.शास्त्री मुख्य निर्वाचन आयुक्त और निर्वाचन आयुक्त के रूप में एस.एस.धनोवा और वी.एस.सहगल सहित तीन सदस्यीय निकाय बन गया। इसके संरचना में एक बार फिर परिर्वतन हुआ 2 जनवरी 1990 से 30 सितम्बर 1993 तक यह फिर एकल सदस्यीय निकाय बना। निर्वाचन आयोग की संरचना को फिर परिर्वतित करते हुए 1 अक्टूबर 1993 से इसे पुनः तीन सदस्यीय निकाय बना दिया गया। वर्तमान में निर्वाचन आयोग तीन सदस्यीय निकाय के रूप में हमारे देश में कार्य कर रहा है।

5.2 उद्देश्य

- इस इकाई में हम निर्वाचन आयोग के उन सभी पहलूओं का अध्ययन करेंगे जिनसे हमें चुनावी प्रक्रिया को समझने में सरलता होगी।
- इस इकाई के द्वारा हम ये भी समझेंगे कि निर्वाचन/चुनाव आयोग का गठन कब हुआ उसके क्या कार्य है?
- निर्वाचन आयोग कैसे कार्य करता हैं और इतने विशाल देश में चुनाव जैसे कार्यक्रमों को सफल बनाने में कैसी कार्यप्रणाली का प्रयोग करता है। यह भी हम इस इकाई में जानेंगे।

5.3 भारत में निर्वाचन आयोग

भारतीय लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया के अलग-अलग स्तर हैं। लेकिन मुख्य तौर पर भारत के संविधान में पूरे देश के लिये एक लोकसभा और पृथक-पृथक राज्यों के लिये एक विधानसभा का प्रावधान है। भारतीय संविधान के भाग-2 में अनुच्छेद 324 से अनुच्छेद 329 तक निर्वाचन की व्यवस्था की गयी है। अनुच्छेद 324 निर्वाचनों का अधीक्षण, निदेशन और नियंत्रण का निर्वाचन आयोग में निहित होना बताता है। संविधान के अनुच्छेद 324 में ही निर्वाचन आयोग को चुनाव सम्पन्न कराने की जिम्मेदारी दी है। 1989 तक निर्वाचन आयोग केवल एक सदस्यीय संगठन था लेकिन 3 अक्टूबर 1989 को एक राष्ट्रपतिय अधिसूचना के द्वारा दो और निर्वाचन आयुक्तों की नियुक्ति की गयी। इस प्रकार निर्वाचन आयोग को पुनः तीन सदस्यीय संगठन बना दिया गया। लोकसभा की कुल 543 सीटों के लिये अलग-अलग राज्यों से प्रतिनिधि चुने जाते हैं। ठीक इसी प्रक्रिया से अलग-अलग राज्यों की विधानसभाओं के लिये अलग-अलग संख्या में विधायकों का चुनाव किया जाता है। नगरीय चुनाव निकाय का प्रबन्धन राज्य निर्वाचन आयोग करता है। जबकि लोकसभा व विधानसभा चुनाव भारत निर्वाचन आयोग के नियंत्रण में होते हैं। जिसमें वयस्क मताधिकार प्राप्त मतदाता प्रत्यक्ष मतदान के माध्यम से सांसद व विधायकों का चुनाव करते हैं। लोक सभा व विधानसभा दोनों का ही कार्यकाल पॉच वर्ष का होता है। लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के लिये सबसे पहले निर्वाचन आयोग अधिसूचना जारी करता है। अधिसूचना जारी हो जाने के बाद सम्पूर्ण निर्वाचन प्रक्रिया के तीन भाग होते हैं-

- नामांकन
- निर्वाचन
- मतगणना

निर्वाचन की अधिसूचना जारी हो जाने के बाद नामांकन पत्रों को दाखिल करने के लिये सात दिनों का समय मिलता है। इसके बाद एक दिन उसकी जॉच पड़ताल के लिये रखा जाता है। इसमें अन्य कारणों से नामांकन पत्र रद्द भी किये जा सकते हैं। तत्पश्चात दो दिन नाम वापसी के लिये दिये जाते हैं। ताकि वो उम्मीदवार जिन्हें किन्ही कारणों से चुनाव नहीं लड़ना हैं वे आवश्यक विचार विनिमय के बाद अपने नामांकन पत्र वापस ले सकें। 1993 तथा 1996 के लोकसभा चुनावों में विशिष्ट कारणों से नाम वापसी का समय चार दिन रखा गया था। परन्तु सामान्यतः यह कार्य दो दिनों में ही पूरा किया जाता रहा है। कभी-कभी किसी क्षेत्र में पुनः मतदान की स्थिति पैदा होने पर उसके लिये अलग से दिन तय किया जाता है। जो नितान्त रूप से निर्वाचन आयोग का एकाधिकार है। मतदान के लिये तय किये गये केन्द्रों में मतदान का समय प्रातः सात बजे से लेकर सायं पॉच बजे तक रखा गया

है। यहॉ एक बात ध्यान देने की यह हैं कि भारत में वोट देने की कोई कानूनी बाध्यता नहीं है। यह नागरिकों का अधिकार हैं कर्तव्य नहीं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं राज्य सभा सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। इन्हें जनता द्वारा चुने गये जनप्रतिनिधि चुनते हैं। चुनाव के समय समस्त प्रशासनिक मशीनरी चुनाव आयोग के नियंत्रण में कार्य करती है। चुनाव की घोषणा होने के पश्चात आचार संहिता लागू हो जाती है। हर राजनीतिक दल, उसके कार्यकर्ता व उम्मीदवार को इसका पालन करना पड़ता है।

5 .3.1 निर्वाचन/चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली व कार्य

हम ऊपर इस बात को जान चुकें हैं कि निर्वाचन आयोग व निर्वाचन आयुक्त सम्बन्धी व्यवस्था का वर्णन संविधान के पंद्रहवे भाग में किया गया है। भारतीय शासन व्यवस्था में हमारे संविधान ने निर्वाचन आयोग को विषेश महत्व दिया है। संविधान सभा के सदस्य हृदयनाथ कुंजरू के अनुसार- ‘‘यदि चुनाव व्यवस्था दोषपूर्ण हैं या अकुशल हैं या ऐसे व्यक्तियों द्वारा संचालित हैं जिनकी निष्ठा सन्देहपूर्ण है, तो प्रजातंत्र के सूत्र में ही जहर घुल जायेगा, इसी कारण हमारे देश में निर्वाचन के विषय को संवैधानिक मान्यता दी गयी है।’’ संविधान निर्माताओं ने निर्वाचन आयोग को संविधान का आधार अंग माना है।

- निर्वाचन आयोग के पास यह उत्तरदायित्व हैं कि वह निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन तथा अयोजन करवाये।
- निर्वाचन आयोग राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संसद, राज्य विधान सभा के चुनाव करवाता है।
- यह निर्वाचन नामावली तैयार करवाता है।
- राजनीतिक दलों का पंजीकरण करता है।
- राजनीतिक दलों का राष्ट्रीय, राज्य स्तर के दलों के रूप में वर्गीकरण करता हैं तथा मान्यता प्रदान करता है।
- यह दलों, निर्दलियों को चुनाव के समय चुनाव चिन्ह देने का काम करता है।
- सांसद व विधायकों की अयोग्यता(दल-बदल को छोड़ कर) पर राष्ट्रपति व राज्यपाल को सलाह देने का काम करता है।
- गलत निर्वाचन उपायों का उपयोग करने वाले व्यक्तियों को निर्वाचन के लिये अयोग्य घोषित करता है।

5 .3.2 निर्वाचन/चुनाव आयोग की प्रमुख शक्तियां

भारत के संविधान का अनुच्छेद 324(1) निर्वाचन आयोग को निम्न शक्तियां प्रदान करता है-

1. सभी निर्वाचनों का पर्यवेक्षण, नियंत्रण व आयोजन अपने विवेकानुसार करना।

2.सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयानुसार अनुच्छेद 324(1) में निर्वाचन आयोग की शक्तियां कार्यपालिका द्वारा नियंत्रित नहीं हो सकती। उसकी शक्तियां केवल उन निर्वाचन सम्बन्धी संवैधानिक उपायों तथा संसद निर्मित विधि से नियंत्रित होती है।

3.निर्वाचन का पर्यवेक्षण, निर्देशन व नियंत्रण का आयोजन कराने की शक्ति में देश में मुक्त, भयविहीन व निष्पक्ष चुनाव कराने के लिये निर्वाचन आयोग असीमित शक्ति रखता है। यद्यपि प्राकृतिक न्याय, विधि का शासन तथा उसके द्वारा शक्ति का सदुपयोग होना चाहिए।

4.निर्वाचन आयोग विधायिका निर्मित विधि का उल्लघंन नहीं कर सकता और न ही ये स्वेच्छा पूर्ण कार्य कर सकता है। उसके निर्णय न्यायिक पुनरीक्षण के पात्र होते हैं।

5 .निर्वाचन आयोग की शक्तियां निर्वाचन विधियों की पूरक हैं न कि उन पर प्रभावी तथा वैध प्रक्रिया से बनी विधि के विरूद्ध प्रयोग नहीं की जा सकती है।

6.निर्वाचन आयोग चुनाव का कार्यक्रम निर्धारित कर सकता है। चुनाव चिन्ह आवंटित करने तथा निष्पक्ष चुनाव कराने के निर्देश देने की शक्ति रखता है।

7.निर्वाचन आयोग की शक्तियों की व्याख्या करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा हैंकि- वह एक मात्र अधिकरण हैंजो चुनाव कार्यक्रम निर्धारित कर सकता हैंऔर चुनाव कराना केवल उसी का कार्य है।

8.जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अनुच्छेद 4 व 2 भी राष्ट्रपति व राज्यपाल को निर्वाचन अधिसूचना जारी करने का अधिकार निर्वाचन आयोग के सलाह के अनुरूप ही देता हैं।

5 .3.3 समयानुसार सख़्त होता चुनाव आयोग

चुनाव के समय चुनाव आयोग ही उच्चतम प्रशासनिक संस्था के रूप में कार्य करता है। उस समय चुनाव आयोग का आदेश अंतिम व सर्वमान्य होता है। चुनाव आयोग की शक्ति क्या है? कानून की शक्ति किसे कहते हैं? और शक्ति का प्रयोग कैसे किया जा सकता हैं इसको सबसे पहले पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने पूरे देश व दुनिया के सामने प्रस्तुत किया । टी.एन.शेषन भारतीय चुनाव आयोग के 10वें मुख्य चुनाव आयुक्त थे। उनका कार्यकाल 12 दिसम्बर 1990 से 11

दिसम्बर 1996 तक रहा। टी.एन.शेषन ने कानून की शक्ति का सबसे प्रभावशाली प्रयोग करके सारे देश को चुनाव आयोग की शक्ति से परिचित करा दिया। इनके कार्यकाल से पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त आम आदमी की जानकारी में प्रायः अनभिग्य ही था। शेषन काल से ही आम आदमी को निर्वाचन/चुनाव आयोग व मुख्य निर्वाचन आयुक्त की भूमिका व उसकी शक्ति का पता चला। आज अपनी शक्ति व कार्यशैली के कारण ही चुनाव आयोग आम सुर्खियों में आ गया है। शेषन ने ही भारतीय राजनीति में जड़ जमाती जोड़-तोड़ की राजनीति, बेईमानी, अपराधी प्रवृति के उमीदवारों, धनबल, बाहुबल पर नकेल डालने का सफल प्रयास करके सारी दुनियॅा के सामने स्वच्छ छवि वाले अधिकारी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया। उन्होंने आने वाले चुनाव आयुक्तों के लिये नजीर पेश कर ईमानदारी की परम्परा स्थापित कर दी। तब से अब तक राजनीतिक दल और उनके सदस्य जो भी मुख्य चुनाव आयुक्त बनता हैं उससे सहम कर रहते हैं।

पिछले आम चुनावों से निर्वाचन/चुनाव आयोग ने चुनावों को निष्पक्ष व भयमुक्त कराने के लिये कठोर दिशा निर्देश जारी कर दिये। नियमों को कठोर बनाते हुए उनका पालन कठोरता से करने के भी आदेश जारी किये गये। इसका एक उदाहरण- पिछले आम चुनावों में मध्यप्रदेष में देखने को मिला। मध्य प्रदेश के पर्यटन मंत्री तुकोजीराव पवार और एक पूर्व सांसद उमीदवार फूलचंद वर्मा को रिटर्निंग आफिसर से बतमीजी करने के आरोप में प्रकरण दर्ज कर जेल भेज दिया। इस घटना से सभी उम्मीदवार व कर्मचारी भयभीत हो गये। चुनाव आयोग के इस शक्ति प्रदर्शन से पूरी मशीनरी में हड़कम्प मच गया। निर्वाचन आयोग ने जब अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया तो जिला अधिकारी, पुलिस अधिकारी व अन्य शासकीय कर्मचारी अपने काम करने में गंभीरता के साथ जुट गये। सभी अधिकारी कर्मचारी रात के 12-12 बजे तक काम में लगे रहे। अब चुनाव आयोग ने सभी कर्मचारियों व अधिकारियों की समय सीमा तय कर दी है। उसी समय के भीतर उन्हें अपना कार्य पूरा करना होता है। सिर पर नोटिस, कारण बताओ पत्र, निलम्बन, बर्खास्तगी की तलवार हमेशा सब के ऊपर लटकी रहती हैं चाहे वह अधिकारी हो या कर्मचारी। उम्मीदवार भी सोच समझ कर कदम रख रहें हैं। सभी उम्मीदवारों ने निर्वाचन आयोग के नियमों का सही से पालन करने के लिये दो-दो वकील व चार्टेड एकाउन्ट रखना आम बात हो गयी है। ताकि चुनाव लड़ने वाला उम्मीदवार या उसका दल आयोग को सभी लेखा-जोखा समय पर दे सके। अब उम्मीदवार को दैनिक खर्च को व्यौरा भी आयोग को देना होता है। चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को संपत्ति का ब्यौरा आयोग के सामने स्पष्ट करना होता है। चुनाव आयोग के कठोर नियमों के चलते उम्मीदवार झण्डे-डन्डे, स्पीकर, बैनर, पोस्टरों पर सतर्कता बरत रहे हैं। अब उम्मीदवार इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि किससे मिलना हैं और किससे चुनाव के दौरान दूरी बना के रखनी हैं ताकि चुनाव आयोग के संदेह के घेरे में न आ जायें। चुनाव आयोग ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर नई चुनाव शैली का शुभारंभ किया है। जिसने इस देश के लोकतंत्र को और मजबूती देने का काम किया है।

भारत में चुनाव आयोग ने एक और महान व उल्लेखनीय काम करके सुर्खिया बटोरी हैं। चुनाव आयोग ने पर्यावरण संरक्षण को ले कर भी अनूठा व अभिनव प्रयोग किया है। यहॉ एक बात ये ध्यान देने की हैं कि वर्ष 2004 में आम चुनावों में आयोग ने ''पेपरलैस'' चुनाव का प्रयोग किया। जो सफल रहा। पेपरलैस चुनाव से तात्पर्य था कि चुनावों मे कागज का कम से कम प्रयोग करना। इस मुहीम को सफल बनाने के लिये आयोग ने लगभग प्रत्येक राज्य में प्रत्येक मतदान केन्द्र पर इलेक्ट्रानिक वोटिंग मशीन(ई.वी.एम.) से मतदान करवाया। ई.वी.एम. से मतदान करवा कर चुनाव आयोग नेदेशका करोड़ो टन कागज बचाया। कागज के बचाने का पर्याय हैं पेड़ो का संरक्षण। पेड़ो को संरक्षित करने का मतलब हैं पर्यावरण को संतुलन प्रदान करना। यह चुनाव आयोग की नई व अनुकरणीय पहल है। इसी क्रम में चुनाव आयोग ने एक और अनूठा प्रयोग किया वो था ''प्लास्टिक पर बैन''। अब चुनाव आयोग के निर्देषों के चलते कोई भी प्रत्याशी या पार्टी प्लाटिक के बिल्ले, बैनर, झण्डिया, पोस्टर, स्टीकर आदि नहीं बनवा सकता है। आयोग ने सभी जिलाधिकारियों को सख़्त आदेश और सार्वजनिक सूचना दी हैं कि जो भी प्रशासन या स्क्रीन प्रिटिंग वाले प्लास्टिक की सामग्री छापेंगे उन्हें तुरन्त काली सूची (Blacklist) में डाल दिया जायेगा और उन पर कड़ी कार्यवाही की जायेगी। ये चुनाव आयोग का सीधे जड़ पर प्रहार है। यह सर्वविदित हैं कि प्लास्टिक पर्यावरण के लिये घातक हैं चुनाव आयोग का ये फैसला पर्यावरण संरक्षण व सामाजिक जीवन के पक्ष में एक क्रान्तिकारी कदम ही कहा जायेगा।

5 .4. मुख्य चुनाव आयुक्त की नियुक्ति

भारत में मुख्य चुनाव आयुक्त व अन्य आयुक्तों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। मुख्य चुनाव आयुक्त का कार्यकाल 6 वर्ष या 65 साल, जो पहले हो होता है। जबकि अन्य चुनाव आयुक्तों का कार्यकाल 6 वर्ष या 62 वर्ष जो पहले हो होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त का सम्मान व वेतन सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के समान होता है। मुख्य चुनाव आयुक्त को संसद द्वारा महाभियोग चला कर पदच्युत किया जा सकता है। मुख्य चुनाव आयुक्त राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहता है। वह राष्ट्रपति को अपना त्याग पत्र देकर पद मुक्त हो सकता है। उसके सेवाकाल में उसके वेतन व उन्मुक्तियों को कम नहीं किया जा सकता है।

5 .4.1 मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार

मुख्य चुनाव आयुक्त के कार्य व अधिकार निम्न हैं-

1.वह संविधानों के प्रावधानों व संघीय व प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पारित कानूनों के अनुसार संसद, राज्य व्यवस्थापिकाओं व स्थानीय स्वशासनों की मतदाता सूची तैयार व संशोधित करने का कार्य करता है।

2.संविधान के प्रावधानों तथा संसद व राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित कानूनों के अनुसार राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति संसद व राज्य विधान मण्डलों के चुनाव सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण,निर्देशन व नियंत्रण करता है।

3.वह राष्ट्रपति या राज्यपाल को, जिसका सम्बन्ध हो, किसी सदन के सदस्य की अयोग्यता के बारे में परामर्श देता है।

4.चुनाव सम्बन्धी अनियमितता के बारे में उठे सन्देहों व विवादों की जॉच के लिये चुनाव अधिकारी नियुक्त करने का दायित्व उसी का है।

5.अपने दायित्वों का भलि-भॉति निर्वाह करने के लिये वह राष्ट्रपति को क्षेत्रीय निर्वाचन आयुक्त नियुक्त करने का सुझाव दे सकता है।

6.वह राष्ट्रपति या राज्यपाल से निर्वाचन कार्य सम्पन्न कराने के लिये उचित मात्रा में कर्मचारी मॉग सकता है।

7.वह निर्वाचन के समय चुनाव चिन्ह सम्बन्धी विवादों को निपटाता है।

8.वह मीडिया के सभी माध्यमों के द्वारा चुनाव की सभी गतिविधियों व निर्देषों को जनता तक पहुॅचाता है।

9.वह चुनाव क्षेत्र परिसीमन आयोग की लिपिकीय त्रुटियों को उनकी पूर्व अनुमति से ठीक कर सकता है।

10.वह चुनाव आलेखों व चुनाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में जनमत को शान्त करने के लिये संकटग्रस्त क्षेत्रों की यात्रा कर सकता है। वह जनसंचार के माध्यमों का प्रयोग कर सकता है।

11.वह किसी भी व्यक्ति को न्यायिक निर्णय द्वारा आरोपित अयोग्यता से मुक्ति दे सकता है।

12.वह विशेष परिस्थितियों में पुनः निर्वाचन का आदेश दे सकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि मुख्य निर्वाचन आयुक्त चुनाव आयोग का सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति होता है। उसके कार्य व क्षेत्राधिकार उसे और भी अधिक महत्वपूर्ण व शक्तिशाली बनाते हैं। लेकिन हम जानते हैं कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में कोई भी कानून से ऊपर नहीं है। हर अधिकारी अपने काम के लिये जवाबदेह हैं जिससे निरंकुशता का खतरा नहीं रहता है। 1978 के 44वें संविधान संशोधन द्वारा राष्ट्रपति को चुनाव आयुक्त से ये पूछने का अधिकार दिया गया कि क्या किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू रहते हुए चुनाव कराना सम्भव है? इस परामर्शीय मत के

प्रावधान के कारण राष्ट्रपति व मुख्य निर्वाचन अधिकारी को राजनीति के अखाड़े में खीचा जा सकता है। संविधान सभा के सदस्य हृदय नाथ कुजरू व सिब्बनलाल सक्सेना ने भी प्रधानमंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति द्वारा मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति को राजनीतिक रूप में प्रभावित होने की आशंका व्यक्त की थी। लेकिन यहॉ ध्यान देने वाली बात ये हैं कि आज तक प्रधानमंत्री के परामर्श से जो भी नियुक्तियॉ राष्ट्रपति ने की वे सभी पदाधिकारी सत्य निष्ठा व उच्च न्यायिक ईमानदारी के धारक रहे हैं।

5.5 चुनाव आयोग की निष्पक्षता पर सवाल

जैसा कि हम जानते हैं भारत विशाल बहुसंस्कृति, बहुभाषी, बहुरंग-रूपी देश है।ऐसे विशालकाय देश में शान्ति पूर्ण चुनाव कराना एक बड़ी सफलता है। जिसे चुनाव आयोग बड़े संयम के साथ निभाता आ रहा है। लेकिन फिर भी कभी-कभी उसकी निष्पक्षता को लेकर सवाल खड़े होते रहे हैं। चुनाव आयोग पर अक्सर ये आरोप लगता रहा हैं कि वो सत्तारूढ़ दल का पक्ष लेता है। चुनाव आयोग पर पक्षपात करने का आरोप लगता रहा है। ये भी कहा जाता रहा हैंकि चुनाव आयोग सत्ताधारी दल से प्रभावित रहता हैं जिससे निष्पक्ष चुनाव नहीं हो पाते हैं। 1971 के बाद से चुनाव आयोग पर इस प्रकार के आरोपों की वृद्धि होते रही है। टी.एन.शेषन पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त जो अपनी इमानदारी व सत्यनिष्ठा के कारण दूसरों के लिये प्रेरणाश्रोत माने जाते हैं उनके विरूद्ध भी ये आरोप लगाया गया। जनता दल व अन्य दलों ने उनके विरूद्ध महाभियोग लाने का प्रयास भी किया। भले ही इसकी निष्पक्षता पर संदेह किया जाता रहा हो लेकिन पिछले चुनावों को देखते हुए ये कहा जा सकता हैं कि चुनाव आयोग की भूमिका अब तक पूर्णतया निष्पक्ष रही है। भारत में अब तक के चुनावों में हांलाकि चुनाव आयोग पर प्रत्यक्ष रूप से पक्षपात का कोई आरोप नहीं लगा हैंलेकिन चुनाव के दौरान उसमें कुछ दोष देखने में आये हैं। जिनको हम निम्न रूप में देख सकते हैं-

1.अल्पमत की जीत-

भारत में जिस उम्मीदवार को सबसे अधिक वोट मिलते हैं वह विजयी होता है। लेकिन कई बार ऐसा देखने में आता हैं कि अन्य उम्मीदवारों को मिले मतों की कुल संख्या विजयी उम्मीदवार को मिल मतों की संख्या से अधिक होती है। कहने का तात्पर्य ये हैं कि विजयी उम्मीदवार को जनता का समर्थन प्राप्त नहीं होता हैं लेकिन उसका मत प्रतिशत अधिक होने के कारण उसे विजयी घोषित किया जाता है।

2.चुनावों में धनखर्च की प्रवृति-

चुनाव आयोग ने धन खर्च को लेकर पार्टी व प्रत्याशी दोनों के लिये कड़े नियम बना दिये हैं लेकिन फिर भी बड़े पैमाने पर धन का खर्च किया जा रहा है। चुनावों में खर्च किये जाने वाले धन की कोई

सीमा नहीं है। चुनाव आयोग ने चुनाव सामग्री को लेकर तो नियम कड़े किये हैं लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से आज भी चुनावों में बड़े स्तर पर धन लगाया जा रहा है। राजनीतिक दलों को अपने आय-व्यय का ब्यौरा फॉर्म 24-ए में भर कर देना पड़ता है। लेकिन अब भी सियासी दल इसको भरने में कतराते रहते हैं। कई राज्यों के बड़े नेताओं व मुख्यमंत्रियों ने इस फॉर्म को भरने में कोताही बरती है। वित्तीय वर्ष 2007-08 में भाजपा व कॉंग्रेस के कई नेताओं ने भी 24-ए नहीं भरा। इससे ये बात साफ हो गयी कि राजनीतिक चन्दे के नाम पर सियासी दलों में कुछ तो संदेहात्मक है।

3.मतदाताओं की निष्क्रियता-

चुनाव आयोग स्वच्छ व निष्पक्ष चुनाव करने के लिये भरसक प्रयास कर रहा हैं लेकिन यह चुनाव आयोग की कमी ही कही जायेगी वो आज भी जनता को चुनाव में मतदान करने के लिये प्ररित नहीं कर पाया है। दिन पर दिन मतदान प्रतिशत गिरता जा रहा है। अवैध रूप से मतदान का स्तर बड़ा है। फर्जी मतदान की घटनाएं अक्सर चर्चाओं में आती है। मतों व मतदाताओं की खरीद फरोस्त आम बात है। इन घटनाओं को लेकर चुनाव आयोग सवालों के घेरे में रहा है।

4.सत्ता प्राप्त दल द्वारा प्रशासन का गलत प्रयोग-

चुनावों की घोषणा होते ही और अधिसूचना जारी होते ही सत्ता में बैठा हुआ दल सत्ता के दम पर प्रशासन का जम के फायदा उठाने की भरसक कोशिश करता है। प्रशासन का इच्छापूर्ति तक प्रयोग करता है। ऐसा भी देखा गया हैं कि सत्ता प्राप्त दल सरकारी तन्त्र को नवीन योजनाएं कार्यान्वित करने तथा चुनावों में अनियमिततांए करने के लिये दबाव बनाता है।

5.चुनाव में गुण्डा तत्वों का प्रयोग-

किसी भी कीमत में चुनाव जीतने के लिये राजनीतिक लोग गुण्डा तत्वों का प्रयोग करने लगे हैं। बूथों पर कब्जा, जाली मत का प्रयोग करना, आतंक पैदा करना, मतपेटी को बदलने जैसी घटनाओं को अंजाम देने के लिये ऐसे तत्वों का प्रयोग राजनीतिक दल व उम्मीदवार खूब कर रहें हैं। इधर के कुछ वर्षो में एक और नई परम्परा का उदय हुआ है। अब राजनीति में अपराधियों का सीधे तौर पर प्रवेश हो गया है। अपराधी प्रवृति के आदमी में ये समझ पैदा हुई हैं कि जिन नेताओं के लिये वो काम कर रहें हैं अंततः सत्ता का लाभ नेता ही लेता है। इसलिये अब अपराधियों ने इस लाभ को स्वयं लेने के लिये राजनीति में प्रवेश किया है। राजनीतिक दल पहले चुनावों में अपराध को मुख्य मुद्दा बना कर चुनाव लड़ते थे अब अपराधियों के चुनाव में आ जाने के कारण व राजनीति का अपराधीकरण होने के कारण ये मुद्दा राजनीतिक दलों ने अपने ऐजेंण्डे से बाहर कर दिया है। चौदहवीं लोक सभा में 200 से ज्यादा ऐसे सदस्य थे जिन पर अपराधिक मामले दर्ज थे। यदि अनुमान लगाया जाये तो देशभर में चुने गये प्रतिनिधियों में लगभग 20 प्रतिशत ऐसे प्रतिनिधि हैं जिनके खिलाफ अपराधी मामले दर्ज

हैं। चुनाव आयोग राजनीति में बढ़ते अपराधियों की संख्या में नियंत्रण करने में लगभग असफल रहा है। चुनाव आयोग के लाख प्रयासों के बाद भी राजनीति में अपराधियों का प्रवेश होता रहा है। जिस कारण चुनावों की सत्यता संदिग्ध हुई है। राजनीति में सभ्य व भले लोंगों, गरीब लोगों ने प्रवेश करना लगभग खत्म कर दिया है।

5.6 निर्वाचन आयोग व अन्य समितियों द्वारा चुनाव सुधार के प्रयास

चुनावों में निरन्तर सुधार की आवश्यकता रही है। चुनाव को निष्पक्ष, स्वच्छ, भयमुक्त बनाने के लिये निर्वाचन आयोग व अनेकों समितियों ने गंभीर प्रयास किये हैं। जिनके परिणामस्वरूप आज भारत में चुनावों प्रक्रिया की स्थिति में सुधार हुआ है। चुनाव सुधारों को लेकर समय-समय पर निर्वाचन आयोग व गठित विभिन्न समितियों ने अपने सुझाव व निर्णय दिये। कुछ महत्वपूर्ण समितियों के सुझाव निम्नलिखित हैं।

1.तारकुण्डे समिति(1974)-

सिटीजन फॉर डेमोक्रेसी संस्था द्वारा चुनाव प्रक्रिया में सुधारों को लेकर वी.एम.तारकुण्डे की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। जिसने अपने महत्वपूर्ण सुझाव दिये-

- मतदान की आयु को 18 वर्ष करना। जिसे 61वें संविधान संशोधन द्वारा कर दिया गया ।
- समिति ने दूसरा महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि राजनीतिक दलों के आय-व्यय का हिसाब रखा जाये तथा चुनाव आयोग इसकी जॉच करे। यह सुझाव अब स्वीकार कर क्रियान्वित कर दिया गया है।
- प्रत्येक उम्मीदवार को सरकार मतदान कार्ड छाप कर निःशुल्क उपलब्ध कराये तथा प्रचार सामग्री को भी डाक से निःशुल्क भेजने की व्यवस्था हो।
- जो भी राजनीतिक दलों को धन दान करे ऐसी संस्था, व्यक्ति को आयकर से छूट मिलने का प्रावधान हो।
- ऐसी स्थिति के आने पर जब लोकसभा या विधानसभा भंग हो जाये, सरकार कामचलाऊ तरीके से काम करती रहे जब तक की चुन कर सरकार नहीं बन जाती। कामचलाऊ सरकार अधिसूचना जारी होने के बाद व सरकार बनने तक कोई महत्वपूर्ण निर्णय न ले।
- ऐसे व्यक्ति जो मंत्री पद धारण किये हुए हैं चुनाव के समय वो सरकारी वाहनों का प्रयोग न करें और न ही सरकारी धन व तंत्र का प्रयोग करें।

- लोक सभा व विधान सभा के चुनावों में नामांकन शुल्क 2000 रूपया व 1000 रूपया किया जाये।

2.श्यामलाल शकधर

भारत के छठे मुख्य आयुक्त श्यामलाल शकधर ने 9 जुलाई 1981 में पहली बार मतदाताओं को फोटोयुक्त परिचय पत्र देने की सिफारिश की। इसे हाथों हाथ स्वीकार कर मतदाताओं को परिचय पत्र देने पर जोर दिया जाने लगा। ये महत्वपूर्ण सुझाव था। शकधर के इस सुझाव के कारण ही आज प्रत्येक मतदाता का परिचय पत्र होता है। इस सुझाव ने जाली मतदान में बड़ी सीमा तक अंकुश लगा दिया। इन्होने यह सुझाव भी दिया कि चुनाव का समस्त व्यय राज्य वहन करेगा।

3. दिनेश गोस्वामी समिति-

श्यामलाल शकधर के सुझावों के बाद दिनेश गोस्वामी की अध्यक्षता में एक और समिति का गठन किया गया जिसने अपनी सिफारिषें देते हुए कहा कि

ऐसे मतदान केन्द्र जिनके बूथों पर कब्जा किया गया हो पुनः मतदान कराया जाये। - भारत बहुभाषीय, बहुजातिय देश हैं इसलिये प्रत्येक समुदाय को चुनाव लड़ने का मौका दिया जाना चाहिए। जिससे ऐसा तबका जो मुख्यधारा में नहीं आ पा रहा हैं उस समाज का व्यक्ति होने से उस समाज में राजनीतिक चेतना का विकास होगा और वह मुख्य धारा से जुड़ेगा। इसके लिये सीटों के आरक्षण हेतु चक्राकार पद्धति अपनायी जाये। चुनाव से सम्बंधित याचिकाओं को शीघ्र निस्तारित किया जाये। ऐसा प्रयास किया जाये कि मतदान इलेक्ट्रोनिक मशीन से हो। जो स्थान किन्ही कारणोंवश रिक्त हो गया हो या रह गया हो उसे स्थान पर छः महीने की अन्दर चुनाव करा लिये जायें। साथ ही मतदाताओं को परिचय पत्र देने की सिफारिस दिनेश् गोस्वामी समिति द्वारा भी की गयी। लोकसभा व विधान सभा में प्रत्याशियों की संख्या कम करने के लिए जमानत राशि 10 गुना बढ़ाने का सुझाव दिया।

के.सन्थानम समिति व टी.एन.शेषन की सिफारिशें -

के. सन्थानम की अध्यक्षता में गठित समिति ने चुनाव को लेकर महत्वपूर्ण सुझाव देते हुए कहा कि चुनाव में भाग लेने वाले प्रत्याशी के लिये न्यूनतम शैक्षिक अर्हता निर्धारित की जानी चाहिए। राजनीतिक दलों का पंजीकरण व संविधान को लेकर स्पष्ट नियम बनाये जायें। निर्वाचन अधिकारियों को निर्वाचन आयोग के अधीन किया जाये तथा दोषी निर्वाचन अधिकारियों पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाये तथा इसका अधिकार मुख्य निर्वाचन आयुक्त को हो। निर्वाचन नामावलियों को हमेशा अद्यतन (अपडेट) रखा जाये

तथा समय-समय पर निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन किया जाये। चुनाव सुधारों को लेकर तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन.शेषन ने महत्वपूर्ण सुझाव दिये। उन्होंने कहा कि- लोकसभा तथा विधान सभा चुनावों के उम्मीदवारों के लिये नामांकन शुल्क क्रमश: रूपया 5000 तथा 2500 किया जाये। साथ ही उन्होंने ये भी सुझाव दिया कि लोक सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 प्रस्तावकों व 10 समर्थकों का होना आवश्यक हो तथा राज्य विधान सभा के उम्मीदवारों के लिये 10 समर्थकों का होना आवश्यक अनिर्वाय हो। इसके साथ ही एक उम्मीदवार एक ही स्थान चुनाव लड़े। एक उम्मीदवार के दो स्थानों से चुनाव लड़ने मे प्रतिबन्ध हो। चुनाव प्रचार केवल 4 दिन तक ही किया जाये। मतदाताओं को पहचान पत्र जारी किये जाये। बूथों पर कब्जा व मतपेटी छीनने व अनाधिकार मतदान करने वालों को संज्ञेय अपराधों की श्रेणी में रखा जाये। आचार संहिता का पालन न करने वाले प्रत्याषियों को 5 वर्ष के लिये अयोग्य घोषित किया जाये।

4.इन्द्रजीत समिति-

1998 में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ सांसद इन्द्रजीत गुप्त की अध्यक्षता में गठित समिति ने अपने सुझाव (अगस्त 2000) में चुनाव सुधारों को लेकर कहा कि राजनीतिक दलों को चुनाव में व्यय करने हेतु धनराशि सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जानी चाहिए। चुनाव खर्चों के लिये एक सार्वजनिक कोष स्थापित किया जाये। जिसमें सरकार प्रतिवर्ष 600 करोड़ रूपये की राषि का योगदान करे। इतनी ही राशि का योगदान राज्यों से भी होना चाहिए।

5. मुख्य चुनाव आयुक्त कुरैशी के सुझाव-

मुख्य निर्वाचन आयुक्त शाहबुद्दीन याकूब कुरैशी ने सुझाव देते हुए कहा कि आदर्श आचार संहिता लागू होने के साथ ही जनमत सर्वेक्षण पर भी पाबंदी लगायी जाये। कुरैशी ने कहा कि जिस तरह से चुनाव आयोग को राजनीतिक दलों के पंजीकरण का अधिकार हैं उसी तरह से फर्जी दलों को अमान्य करने का भी अधिकार चुनाव आयोग को होना चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत में वर्तमान में 1200 दल हैं, इसमें से 20 सक्रिय राजनीति में हैं जबकि शेष फर्जी हैं। धनबल व पेड न्यूज पर लगाम लगायी जाये। उन्होंने सुझाव देते हुए कहा कि अपराधिक रिर्काड वाले लोगों को चुनाव लड़ने से रोका जाये। मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने ये भी सुझाव दिये कि चुनाव में सरकारी धन का प्रयोग नहीं होना चाहिए। उन्होंने सुझाव दिया कि उम्मीदवारों की अयोग्यता की अवधि को तीन से बढ़ा कर पॉच साल कर दिया जाये। साथ ही उन्होंने सुझावों में ये भी कहा कि चुनाव आयोग मतदाताओं को पर्ची बॉटेगा जिसमें चुनाव चिन्ह होंगे। ऐसा शीघ्र ही पं.बंगाल में होने वाले चुनावों में किया जायेगा। ऐसा करने के पीछे प्रमुख कारण ये हैं कि चुनाव से 48 घन्टे पहले जो राजनीतिक दल पर्चीयॉ बॉटते वक्त मतदाताओं को उपहार व धन देने का प्रयास करते हैं उन पर नियंत्रण किया जा सकेगा।

5.7 सारांश

आज भारत में चुनाव एक चुनौती के रूप में देखे जाते हैं। आजादी से आज तक चुनाव की प्रणालियों में परिर्वतन आया है। पहले चुनाव लोकतंत्र के सबसे बड़े पर्व की तरह देखे जाते थे। मेले की तरह चुनावों में उत्साह देखा जाता था। हर मतदाता चुनावों में बड़-चढ़ कर भागीदारी करता था। लेकिन आज चुनाव व मतदाता दोनों में परिर्वतन आया है। चुनावों में प्रवेश करते अपराधी तत्वों के कारण चुनाव आयोग भी सख़्त हुआ है। मतदान का प्रतिशत गिरा है। इन्ही सब चर्चाओं को लेकर ये अध्याय हमने पढ़ा। इस इकाई से हमने ये जानने व समझने का प्रयास किया कि चुनाव आयोग क्या हैं वह कैसे काम करता है। उसकी कार्य प्रणाली क्या है। चुनाव आयोग का सबसे बड़ा मुखिया उसका अध्यक्ष होता हैं जिसे मुख्य निर्वाचन आयुक्त कहा जाता है। भारत में चुनावों की चुनौतियों को देखते हुए मुख्य निर्वाचन आयुक्त का भी दायित्व बढ़ा है। इस इकाई में हमने मुख्य निर्वाचन आयुक्त को कैसे चुना जाता हैं उसके क्या कार्य व शक्तियॉ होती हैं इस पर विस्तृत चर्चा की। भारत एक विशाल देश हैं जहॉ कई भाषा व संस्कृति के लोग एक साथ निवास करते हैं। जिसके चलते चुनावों को सफलता तक ले जाना कठिन काम होता है। इसके लिये चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किये जाते रहे हैं। जिसके लिये कई समितियों व विद्वानों ने अपने सुझाव दिये हैं जिससे चुनाव प्रक्रिया में समय-समय पर सुधार किया जाता रहा है। इस पर भी इस इकाई में विस्तृत चर्चा की गयी। संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि निर्वाचन आयोग को जानने के लिये यह इकाई लाभप्रद होगी।

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
2. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
3. संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
4. सुभाष कश्यप-हमारी संसद
5. सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका
2. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

5 .12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में निर्वाचन आयोग की भूमिका व कार्य प्रणाली को समझाएं?
2. निर्वाचन आयोग शक्तिशाली हैं इस पर अपने विचार दीजिए?
3. आज निर्वाचन आयोग आम आदमी की हर समस्या के साथ खड़ा हैं। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?
4. मुख्य निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति व उसकी शक्तियों को समझाइये? बताएं कि उसे पदच्युत कैसे किया जा सकता है?
5. भारत में चुनाव एक चुनौती बनते जा रहे हैं जिस कारण चुनाव आयोग भी सख़्त होता जा रहा है। इस पर अपने विचार लिखिये?
6. भारत में चुनाव सुधारों को लेकर लेख लिखिये?

इकाई 6 भारतीय राजनीति में जातिवाद

6 .1 प्रस्तावना

6 .2 उद्देश्य

6 .3 भारतीय राजनीति में जाति

6 .3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव

6 .3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव

6 .3.2.1पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव

6 .4 सारांश

6 .6 शब्दावली

6 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6 .7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6 .8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

6 .9 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

इस पुस्तक के अध्ययन में विभिन्न इकाइयों में हमने यह देखा कि भारत में परंपरागत सामाजिक संरचना पाई जाती है। जाति आधारित संरचना पाई जाती है।जिसमें पदसोपान क्रम स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।परंपरागत रूप से कुछ जातियां उच्च स्तर की और क्रमशः नीचे आती हुई दिखाई देती हैं। परंतु स्वतंत्रता के बाद एक आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया।अर्थात संसदीय लोकतंत्र को अपनाया गया।देश में राजनीतिक जीवन में सभी समान अधिकार प्राप्त किये। तसामाजिक जीवन में भी सभी समान अधिकार प्राप्त संपन्न हुए। उच्चता और निम्नता के आधार को संविधान के द्वारा समाप्त घोषित करते हुए दंडनीय घोषित किए गए। इस आधार पर कई विशेषज्ञों का यह मानना था कि इस आधुनिक राजनीतिक प्रणाली को अपनाने के कारण भारत की जाति आधारित व्यवस्था का अंत हो जाएगा। परंतु यह समझना उनकी भूल थी। क्योंकि कोई भी राजनीतिक प्रणाली किसी अमूर्त जगत में काम नहीं करती है। वह समाज में ही संचालित होती है। इसलिए सामाजिक संरचना के सामाजिक जीवन का राजनीतिक जीवन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। लेकिन संसदीय लोकतंत्र में न केवल स्वयं पर प्रभाव को पाया बल्कि स्वयं के द्वारा भी इस सामाजिक संरचना को, जो जाति आधारित है ,इसको भी प्रभावित किया है। इन्हीं दोनों पक्षों का अध्ययन विशेष रूप से इस इकाई में किया गया है।अंततः इस इकाई में इस बात का अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार से यह जाति व्यवस्था वर्तमान राजनीतिक राजनीतिक प्रणाली के लिए सकारात्मक रही है या नकारात्मक और अगर रही है तो किस हद तक।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1.भारतीय राजनीति में जाति के विविध पक्षों के बारे में जान सकेंगे।

2.राजनीति पर जाति के प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे।

3.जाति पर राजनीतिक व्यवस्था के प्रभाव का अध्ययन कर सकेंगे।

6.3 भारतीय राजनीति में जाति

भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है। संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातिय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं। एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से

हाशिए की जातियां के समर्थन को आगे बढ़ी तो आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक की सामाजिक दूरियां थी को कम करने का कार्य किया है।

इसलिए भारतीय राजनीति में जाति के पक्षों का अध्ययन करने के लिए रजनी कोठारी के अनुसार दो मुख्य तरीकों से अध्ययन करना नितांत आवश्यक है -

प्रथम राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव डाल रही है

दूसरा जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का क्या प्रभाव पड़ रहा है

6 .3.1 राजनीतिक प्रणाली पर जाति व्यवस्था किस प्रकार से प्रभाव

प्रथम तो हम जाति व्यवस्था के राजनीतिक प्रणाली पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करेंगे इस क्रम में यह चर्चा करना नितांत आवश्यक है जैसा कि की परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना पदसोपान आधारित रही है जिनमें कई बार सामाजिक दूरियां भी दिखाई देती है इस व्यवस्था के साथ स्वतंत्रता के उपरांत भारत में जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था को अपनाया गया उसे संसदीय संघात्मक लोकतंत्र कहते हैं। जिसमें प्रत्येक भारतीय नागरिक को सम्मान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए।

ऐसे में सत्ता प्राप्ति के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए सत्ता में हिस्सेदारी के सभी को समान अवसर प्राप्त हुए क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में सरकार का संचालन कौन करेगा यह है इस बात पर निर्भर करता है कि निम्न सदन में बहुमत किसके पास है अर्थात बहुमत प्राप्त करने वाले दल को सरकार बनाने का अधिकार होता है और देश के लिए कार्य करने का संवैधानिक दायित्व प्राप्त होता है इस स्थिति में है स्पष्ट करना कि जहां परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन दिखाई देता है ।ऐसे में सत्ता प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न समूह एक साथ आए क्योंकि चुनाव प्रक्रिया में कोई एक जाति अपने दम पर चुनाव में बहुमत प्राप्त करने की स्थिति में नहीं रही ।ऐसे में उसे अन्य जाति समूहों से संपर्क साध कर उनसे एकजुटता स्थापित करने का कार्य प्रारंभ किया गया। इस प्रक्रिया ने समाज में जो अभी तक भेदभाव थे उसमें काफी शिथिलता है।

परंपरागत भारतीय समाज में जो एक दूसरे से सामाजिक रुप से दूर थे अब राजनीतिक सफलता के लिए सामाजिक रुप से नजदीक आते हुए दिखाई दे रहे हैं। जो परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियां थी उनको अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए अन्य जाति समूह को साथ लेने की आवश्यकता हुई क्योंकि इन मजबूत स्थिति वाली जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा, अन्य जातियों को

अपने साथ लेने के लिए मार्ग प्रशस्त किया जिसका परिणाम हुआ कि मुख्यधारा की जातियों में प्रतिस्पर्धा और मुख्यधारा की जातियों तथा हासिये की जातियों में प्रतिस्पर्धा इसलिए मुख्य धारा की जातियों ने अभी तक हासिये पर रही जातियों को अपने साथ लेने का कार्य किया। जिससे इनके बीच सामाजिक दूरियां कम होती दिखाई देने लगी ।परिणाम यह हुआ कि अभी तक जिन जातियों को जन्म के आधार पर उच्चता और निम्नता गरीब अमीर संपन्न विपन्न और छुआछूत के शिकार थे उन्हें भी इस लोकतांत्रिक प्रणाली में सक्रिय होने का राजनीतिक अधिकार मिला तथा मजबूत स्थिति की जातियों ने स्वयं ही उनके घर जाकर उनको अपने साथ लेना स्वीकार किया। क्योंकि अब उन्हें अपनी पूर्व की प्रभुता संपन्न स्थिति को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था की वे राजनीतिक सफलता प्राप्त करे । उस राजनीतिक सफलता के लिए अन्य जातियों को साथ लेना आवश्यक हो गया जिससे जातियों के बीच चाहे व्यवस्था के कारण लेकिन प्रारंभिक चरण में राजनीतिककारणों से सामाजिक दूरियां भी कम होती हुई दिखाई पड़ी जिसका परिणाम हुआ अभी तक जो जातियां क्षत्रिय ब्राह्मण वह शूद्र या मुख्यधारा से वंचित जाती है जिनमें काफी समाजिक दूरियां भी दिखाई देती रही है अब काफी नजदीक आए।

इसके साथ ही अभी महत्वपूर्ण विषय है कि अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए संसदीय प्रणाली की चुनाव प्रक्रिया में स्थान सुरक्षित किए गए जिसका परिणाम हुआ कि आरक्षित क्षेत्र में आरक्षित समूह की जातियों में आपसी प्रतिस्पर्धा हुई और इन्होंने अपनी जीत के लिए परंपरागत रूप से जो उच्च जाति थी उनके पास राजनीतिक समर्थन प्राप्त करने के लिए जाने का मार्ग प्रशस्त किया।

दो तरीके से इस संसदीय प्रणाली में जाति व्यवस्था प्रभावित होती है और परंपरागत रूप से जातिय बंधन शिथिल होते हुए दिखाई देते हैं--

एक तरफ कुछ जातियां अपनी महत्वपूर्ण स्थिति को बनाए रखने के लिए राजनीति में सफलता के लिए बहुमत प्राप्त करने के लिए परंपरागत रूप से हाशिए की जातियां के समर्थन को आगे बढ़ी हैं

दूसरे आरक्षित क्षेत्रों में अनुसूचित जातियों और जनजातियों ने मुख्यधारा की जातियों को राजनीतिक सफलता के लिए अपने साथ लेने की आवश्यकता हुई ।दो तरफा प्रक्रिया ने अभी तक सामाजिक जो दूरियां थी उनको कम करने का कार्य है।

6 .3.2 जाति व्यवस्था पर राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव

ऐसा नहीं है कि संसदीय लोकतंत्र ने ही जाति व्यवस्था को प्रभावित किया है और परंपरागत रूप से जो सामाजिक बंधन थे उनमें राजनीतिक कारणों से काफी शिथिलता आई है , सामाजिक दूरियां बढ़ती हुई दिखाई दी ,इसके साथ ही साथ जाति व्यवस्था ने भी राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है। इसकी प्रभावशीलता की परिधि के बारे में यह कहना महत्वपूर्ण है की चुनाव प्रक्रियाओं

के संचालन की प्रक्रिया में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि राजनीतिक दल जाति आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जातिय राजनीतिक सफलता की बात करते हुए दिखाई देते हैं तथा विभिन्न राजनीतिक दलों से इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए गठबंधन करते हुए दिखाई देते हैं।इसलिए चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित राजनीतिक दलों के गठबंधन की दिखाई देते हैं तथा जैसा कि पूर्व के पक्ष में अध्ययन करते हुए देखा कि किस प्रकार से राजनीतिक व्यवस्था का प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़ा और जातियों में परिवर्तन दिखाई देता है लेकिन उसमें हमने यह भी देखा है कि राजनीतिक सफलता के लिए अर्थात सत्ता प्राप्ति के लिए बहुमत प्राप्ति की आवश्यकता होती है बहुमत अपने जाति के आधार पर ही नहीं प्राप्त किया जा सकता है। अन्य जातियों के समर्थन की आवश्यकता होती है। तो यह दिखाई देता है कि जाति आधारित राजनीतिक दलों ने जहां अपने संगठित जाति चेतना के आधार पर अपने जाति समूह के संगठित मतदान व्यवहार को प्रेरित किया तो दूसरी तरफ अपने राजनीतिक दल से अन्य जाति के प्रत्याशी को उतार कर के उनका भी समर्थन प्राप्त कर सत्ता प्राप्ति की तरफ आगे बढ़ाने का कार्य किया है। कई बार यह भी दिखाई देता है कि राजनीतिक दल अपने में ही विभिन्न क्षेत्रों में प्रभावशाली जातियों अलग-अलग जातियों को प्रत्याशी के रूप में उतारते हुए दिखाई देते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि कहां पर किस जाति समूह के समीकरण सफलता के अनुकूल हो सकते हैं, उसके अनुसार टिकट वितरण और प्रत्याशी का चयन कर चुनाव मैदान में उतारते हुए हुए दिखाई दिए हैं और इसके राजनीतिक सफलता के रूप में परिणाम भी दिखाई दिए है।

यहां इस बात के अध्ययन में यह भी ध्यान में रखना होगा कि अनुसूचित जाति कि संगठित राजनीतिक चेतना ,राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दोनों तरह की राजनीति को प्रभावित किया है क्योंकि न केवल क्षेत्रीय दल वरन, राष्ट्रीय दल भी अपनी संगठनात्मक ढांचे में विभिन्न जातियों को प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं ,ताकि चुनाव प्रक्रिया में उन सभी जातियों का राजनीतिक समर्थन उनको हासिल हो। साथ ही सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों के सदस्य को मंत्री बनाकर प्रतिनिधित्व देते हुए दिखाई देते हैं। ताकि सरकार में उन सभी को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो और वह एहसास कर सकें की सरकार उनकी है, उनके लिए कार्य करने को तत्पर है। प्रत्याशियों के चयन में भी इस प्रकार की बात क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दोनों स्तर की चुनाव में स्पष्ट दिखाई देता है।यही नहीं स्थानीय चुनाव में भी प्रत्यक्ष रुप से जातिय समीकरण दिखाई देने लगे हैं क्योंकि विभिन्न आयोजन जहां पर अतीत में परंपरागत रूप से एक साथ जाते हुए सभी जातियां नहीं दिखाई देती थी।

6 .3.2.1पंचायत चुनाव का जाति व्यवस्था पर प्रभाव

आज पंचायत चुनाव में सफलता की आकांक्षा ने भी अलग-अलग जातियों को एक साथ आने के लिए प्रेरित किया है।यहाँ भी उसी तरह की प्रतिस्पर्धा स्पष्ट दिखाई देती है, जाति व्यवस्था ने वहां भी राजनीति को बहुत अंदर तक प्रभावित किया है। प्रथम चरण में मुख्यधारा से वंचित जातियां

स्वयं में संगठित हुई और अपने प्रत्याशी को उतारकर के चुनाव में संगठित मतदान के द्वारा राजनीतिक सफलता प्राप्त की हैं। लेकिन अगले चरण में इनमें स्वयं भी प्रतिस्पर्धा दिखाई दे रही है। इसलिए इनके बीच में भी कई प्रत्याशी चुनाव मैदान में उतर रहे हैं। परिणाम यह हो रहा है कि अन्य परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों के पास यह आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण जा रहे हैं ,ताकि वह पंचायत चुनाव में सफलता प्राप्त कर सकें। इसी के साथ मुख्यधारा की जाती जिनमें आपसी प्रतिस्पर्धा पाई जाती है, यह भी अपनी राजनीतिक सफलता के लिए उन जातियों के पास जाते हुए दिखाई देते हैं जो अभी तक मुख्यधारा में नहीं रही है। इस प्रकार से जाति व्यवस्था ने भी पूरे राजनीतिक प्रणाली को प्रभावित किया है।

कई बार आलोचक कहते हैं कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के अपनाने के बाद भी भारत में जाति व्यवस्था का अंत नहीं हुआ है। जबकि संविधान की भावना के अनुरूप एक जाति विहीन समाज की कल्पना की गई थी परंतु यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है की राजनीतिक प्रक्रियाओं का संचालन अमूर्त जगत में नहीं होता है , समाज में ही होता है ।इसलिए वह समाज की संरचना से प्रभावित भी होगा और उसे प्रभावित भी करेगा ।इस संदर्भ में **रजनी कोठारी** का मत बहुत ही तर्कसंगत प्रतीत होता है कि “भारतीय राजनीति और जाति व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों में यह उम्मीद करना कि जाति व्यवस्था का अंत हो जाएगा यह ठीक नहीं है। वह मानते हैं कि कोई भी सामाजिक तंत्र कभी भी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता इसलिए यह कहना कि भारत में जाति का लोप हो रहा है व्यर्थ है।”

इसी के साथ **रजनी कोठारी** जी यह भी कहते हैं कि “जो लोग भारतीय राजनीति में जातिवाद के विद्यमान होने की शिकायत करते हैं वह एक ऐसी राजनीति की कल्पना करते हैं जो समाज में संभव नहीं है ।वास्तव में जिसे राजनीति में जातिवाद कहा जाता है वह जातियों के राजनीतिकरण से अधिक और कुछ नहीं।”

अभ्यास प्रश्न

1 .भारत में कौन सी शासन प्रणाली अपनाई गई है ?

2. भारतीय लोकतंत्र में जाती व्यवस्था के समाप्त होने की बात करने वालों की आलोचना किसने की है ?

6.4 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर कुछ बातें स्पष्ट हो गई की परम्परागत भारतीय समाज में आज आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को लागू किया गया है।जहां परंपरागत भारतीय समाज में नाना रूप में सामाजिक निर्योग्यताएं थी वही आधुनिक राजनीतिक प्रणाली ने सबको समान राजनीतिक और सामाजिक अधिकार प्रदान किए।फलस्वरूप एक तरफ तो जन सामान्य के लिए सत्ता में हिस्सेदारी का अवसर प्राप्त हुआ तो दूसरी तरफ सत्ता प्राप्त करने के लिए जनसामान्य के विभिन्न घटकों जिन्हें जाति व्यवस्था के विभिन्न घटक कर सकते हैं अर्थात विभिन्न जातियों के समर्थन के लिए सहयोग के लिए और संगठन के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यह कहना आसान नहीं है कि जाति व्यवस्था ने अच्छा किया या बुरा किया। आधुनिक राजनीतिक प्रणाली में लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि परंपरागत रूप से प्रचलित जाति व्यवस्था आधुनिक संसदीय लोकतंत्र लागू करने के उपरांत जातियों को सत्ता में भागीदारी के अवसर के साथ सामाजिक रुप से सम्मानजनक स्थिति प्राप्त हुए। क्योंकि बहुमत प्राप्ति के लिए सभी जातियां एक दूसरे के सम्मेलन और विघटन की प्रक्रिया की हिस्सेदार बनी।समय-समय पर चुनाव प्रक्रिया में जाति आधारित प्रत्याशियों के चयन ,सरकार के गठन में विभिन्न जाति समूहों को मंत्रिपरिषद में स्थान देना, इस प्रकार से राजनीतिक प्रणाली को जाति व्यवस्था ने प्रभावित किया।जाति व्यवस्था ने राजनीतिक प्रणाली का प्रभाव महसूस किया क्योंकि जो हासिये की जातियां थी जो सामाजिक रूप से मुख्यधारा में नहीं थी नाना रूप में निर्योग्यताओं की शिकार थी ,बहुमत प्राप्ति की आकांक्षा में परंपरागत रूप से मुख्यधारा की जातियों को मुख्यधारा से वंचित जातियों के साथ जुड़ने और उनके साथ चलने को तैयार किया। इस प्रकार से जातियों के बीच बढ़ते राजनीतिक संगठन में सामाजिक दूरियों को कम करने का कार्य किया है। आज वे जाति समूह जो परंपरागत रूप से हासिये पर थे खानपान और रहन-सहन संबंधी सामाजिक निर्योग्यता के शिकार थे ,एक साथ सामाजिक धार्मिक सांस्कृतिक आयोजनों में आसानी से देखे जा सकते हैं।

परंतु यहां एक बात और स्पष्ट करना आवश्यक है जाति चेतना राजनीतिक संगठन के साथ राजनीतिक विघटन और क्षेत्रीयतावादी तत्वों को भी बढ़ाने का कार्य करते हुए दिखाई देती है ,जो राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में एक प्रमुख बाधा के रूप में सामने आता है। इसलिए उम्मीद नहीं की जा सकती है आगे बढ़ते समय में जन जागरूकता ,सकारात्मक दलीय प्रणाली, रचनात्मक विपक्ष, सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकार से युक्त राजनीतिक दल और दबाव समूह, निष्पक्ष स्वतंत्र और नियतकालिक चुनाव के माध्यम से जाति की नकारात्मक तत्वों को सीमित करने में काफी सफलता हासिल करेंगे।

6 .6 शब्दावली

सामाजिक रूपांतरण – यह वह प्रक्रिया है जिसमें समाज में संबंधों के स्वरूप में बदलाव दिखाई देता है। जैसे भारत में परम्परागत रूप से कई निर्योग्यताएं थी जो समय के साथ बदलती हुई दिखाई दे रही है जिसमें सभी जातियों में आपसी आदान प्रदान में वृद्धि हुई है।

6 .6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.संसदीय शासन प्रणाली 2.रजनी कोठारी

6 .7 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष कश्यप - पालिटिक्स आफ डीफेक्सन

2. जे.सी. जौहरी - रिफलैकवर्ष आफ इंडियन पालिटिक्स

3. एस.एम.सईद - भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

4. जे.सी.जौहरी - भारतीय शासन और राजनीति

6 .एस. एम सईद – भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

6 .8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.बी.एल. फडिया- भारतीय शासन और राजनीति

2.एम.पी.राय, आर .एन. त्रिवेदी – भारतीय सरकार एवं राजनीति

6 .9 निबंधात्मक प्रश्न

भारत में राजनीति पर जाति और जाति पर राजनीति के प्रभावों की विवेचना कीजिए?

इकाई 7 भारत में पंथनिरपेक्षता

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व

7.4 मौलिक अधिकार में प्रावधान

7.5 सारांश

7.6 शब्दावली

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.10 निबंधात्मक प्रशन

7.1 प्रस्तावना

भारत में संविधान निर्माताओं के लिए, आजादी के लिए संघर्ष के आदर्श मार्गदर्शक रहें हैं। उनमें से बहुत से आदर्शों को संविधान में प्रावधान करके उन्हें भारतीय राजव्यवस्था का अंग बनाया गया है। जिससे यह सदैव देश को उन आदर्शों और लक्ष्यों के प्रति संवेदनशील बनाए रखें और उनकी निरंतर प्राप्ति के लिए प्रयास करें। इन सभी में एक महत्वपूर्ण है पंथनिरपेक्षता ।यद्यपि मूल संविधान में इस शब्द का प्रयोग तो नहीं किया गया था परंतु संविधान के बहुत से भागों में पंथनिरपेक्षता का समर्थन और पोषण करने वाले प्रावधान किए गए थे। इन्हीं से संबंधित पक्षों का अध्ययन इस इकाई में किया गया है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त निम्नलिखित विषयों में जानकारी हो सकेगी

1. पंथनिरपेक्षता के अर्थ
2. पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व
3. मौलिक अधिकार में प्रावधान जो पंथनिरपेक्षता राज्य की स्थापना में योदान करते हैं

7.3 पंथनिरपेक्षता का अर्थ और इसके मुख्य तत्व

भारत में आजादी की लड़ाई में भारत के सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के लोगों ने एकजुट होकर संघर्ष किया है यद्यपि इसके कुछ अपवाद भी है। 15 अगस्त 1947 को आजादी प्राप्त हुई। इसलिए संविधान निर्माताओं के सामने एक बड़ी समस्या थी कि इन सभी समुदायों को चाहे वो किसी भी धर्म से हों सबको समान रूप से संरक्षण प्राप्त हो सके। जिससे उनके विकास में धर्म के आधार पर न तो किसी को विशेषाधिकार प्राप्त हो और न ही कोई वंचित रह सके। संविधान निर्माताओं के अनुसार ऐसा केवल पंथनिरपेक्षता को अपनाकर ही किया जा सकता था ।इसीलिए संविधान निर्माताओं ने संविधान में इससे संबंधित व्यापक प्रावधान किए हैं। यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है की संविधान में पंथनिरपेक्ष शब्द का उल्लेख नहीं किया गया इस शब्द का प्रावधान भारतीय संविधान में 42 वें संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा किया गया।

पंथनिरपेक्षता के अर्थ

भारत में पंथनिरपेक्षता अंग्रेजी का सेक्यूलर शब्द धर्मनिरपेक्ष के बजाय पंथनिरपेक्ष के अधिक निकट है। इस संदर्भ में भारतीय परंपरा धर्म का अर्थ धारण करने योग्य अर्थात जो धारण करने योग्य है वही धर्म है। इस अर्थ में धर्म से अलग अपने को नहीं किया जा सकता क्योंकि इस अर्थ में यह एक जीवन शैलीहै। इस अर्थ में धर्मनिरपेक्ष के स्थान पर पहुंचने पंथनिरपेक्ष सेक्यूलर के अधिक निकट

है। संविधान निर्माता सांप्रदायिक संघर्ष और अंततः देश के विभाजन से भयभीत होकर देश को एक पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करना चाहते थे। इनके समर्थन में मौलिक अधिकार के भाग में अनुच्छेद 25 से 28 तक महत्वपूर्ण प्रावधान किए गए हैं।यह प्रावधान सभी धर्म के मानने वालों को समान रूप से धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान करते हैं जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनी है।

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रावधान नहीं किया गया भारत में संवैधानिक संशोधन 1976 के द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में संशोधन किया गया। जिसके माध्यम से पंथनिरपेक्ष शब्द को जोड़ा गया। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में विश्वास धर्म और उपासना की स्वतंत्रता का प्रावधान किया गया है किंतु पंथनिरपेक्ष शब्द का उपबंध करके ही इन्हें और स्पष्ट करने का प्रयास किया गया। यद्यपि आलोचक इसके पीछे राजनीतिक कारण बताते है क्योंकि जब सभी नागरिक समान हैं और सभी को समान धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है तो फिर इस शब्द को शामिल करने का औचित्य क्या है। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है की पंथ निरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं है राज्य का धर्म विशेष के प्रति कोई आग्रह नहीं है या वह किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं रखेगा। राज्य सभी धर्मों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार करें।सभी को समान रूप से संरक्षण प्रदान करेगा इसके साथ ही साथ वह स्पष्ट करता है कि देश के सभी नागरिकों को अपनी रूचि के अनुसार धर्म को मानने उसके अनुसार आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता है।

पंथनिरपेक्षता के मुख्य तत्व

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता का प्रावधान किया गया है उसका अध्ययन निम्नलिखित बिंदुओं के अंतर्गत किया जा सकता है –

1.भारत का अपना कोई राजधर्म नहीं है अर्थात किसी धर्म विशेष के प्रभाव में नहीं है। राज्य अपने देशवासियों को धार्मिक अधिकार प्रदान करने में सभी के साथ समान व्यवहार करेगा।

2.इसमें कोई विशेषाधिकार प्राप्त धार्मिक समुदाय नहीं होगा।

3 .धर्म के आधार पर किसी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं हुआ।

4. लोक नियोजन में अर्थात सरकारी पदों की प्राप्ति में भी राज्य के द्वारा धार्मिक आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। बल्कि सभी को समान अवसर प्रदान किए जाएंगे।इसका प्रावधान भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

7.4 मौलिक अधिकार में प्रावधान

भारतीय संविधान में पंथनिरपेक्षता को और स्पष्ट करने के लिए संविधान के भाग 3 में उल्लिखित मौलिक अधिकारों के रूप में कुछ अनुच्छेद का उल्लेख करना आवश्यक है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 4 इस बात की घोषणा करता है कि भारतीय क्षेत्र में सभी व्यक्ति कानून के समक्ष समान होंगे और सभी को कानून का समान संरक्षण प्राप्त होगा।

इसको अधिक व्यापकता से देखते हैं तो स्पष्ट है यह कानून के शासन की स्थापना करता है। जिसमें किसी भी व्यक्ति का कोई विशेषाधिकार नहीं होगा चाहे वह एक साधारण व्यक्ति है या प्रधानमंत्री।सभी एक ही कानून के द्वारा शासित होते हैं।यह स्पष्ट करना आवश्यक है की जब देश के समस्त नागरिक समान है तो ऐसी स्थिति में पूजा पद्धति के आधार पर या संप्रदाय विशेष के आधार पर किसी भी प्रकार के भेद नहीं किया जा सकता है।

इस दृष्टि से संविधान के कुछ अन्य अनुच्छेद का प्रावधान भी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि परंपरागत भारतीय समाज में सामाजिक विभाजन बहुत पाया जाता रहा है उस विभाजन को कमजोर करने और समरसता को बढ़ाने के लिए अनुच्छेद 2 का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसके अनुसार -राज्य धर्म मूल वंश जाति लिंग जन्म स्थान अथवा इन में से किसी एक के आधार पर किसी नागरिक के साथ कोई भेदभाव नहीं करेगा। इसका तात्पर्य है कि राज्य सभी धर्म के प्रति समान व्यवहार करेगा किसी के साथ धर्म के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव का निषेध किया जाता है।

इसी के साथ अनुच्छेद 3 में प्रावधान है की राज्य के अधीन नियोजन में अर्थात सरकारी पदों पर नियुक्ति में सभी को समान अवसर प्राप्त होंगे अनुच्छेद 3 (2)में प्रावधान है कि केवल धर्म मूल वंश जाति लिंग जन्म स्थान निवास अथवा इनमें से किसी आधार पर किसी नागरिक के लिए राज्य के अधीन पदों पर नियोजन के संबंध में न तो अपात्रता होगी न हीं विभेद किया जाएगा। सामाजिक समरसता की स्थापना में एक और अनुच्छेद है जो भारतीय समाज में मील का पत्थर साबित हो रहा है वह है अनुच्छेद 9 जिसके के अंतर्गत -अस्पृश्यता को समाप्त किया जाता है इसके किसी भी रूप में पालन या प्रोत्साहन को दंडनीय अपराध घोषित किया गया है।

पंथनिरपेक्षता की दृष्टि भारतीय संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकारों के कुछ अन्य प्रावधान भी बहुत ही महत्वपूर्ण है जिसमें धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जिसके अनुच्छेद 25 से लेकर 28 तक प्रावधान किए गए हैं।अनुच्छेद 25(1)में यह प्रावधान है कि सार्वजनिक व्यवस्था सदाचार स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की क्षमता और धर्म को अवैध रूप से मानने उसके अनुरूप आचरण करने और प्रचार करने की पूरी सफलता है। पंथनिरपेक्षता का इससे बड़ा प्रावधान क्या हो सकता है कि यह अधिकार न केवल नागरिकों को वरन विदेशियों को भी प्राप्त है।

अनुच्छेद 26 में प्रावधान है कि प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके भाग को धार्मिक प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना ,धार्मिक कार्यों से संबंधित सभी विषयों के प्रबंध का अधिकार है।

अनुच्छेद 27 सभी धर्मों को अपनी धार्मिक गतिविधियों को संचालित और प्रोत्साहित करने का अवसर प्रदान करती है ।क्योंकि संविधान निर्माताओं का मानना था कि संविधान में अधिकार का प्रबंध कर देना ही पर्याप्त नहीं है वरन उसके उपयोग की दशाएं भी होनी चाहिए ।इस प्रकार अनुच्छेद 27 में यह उपबंध है कि किसी विशेष धर्म की वृद्धि के मामले में कर संदाय (peyment) की स्वतंत्रता है। इसका तात्पर्य है कि किसी व्यक्ति को ऐसे आय पर कर देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जो किसी धर्म विशेष या उसके किसी भाग की वृद्धि के लिए है ।इसी प्रकार अनुच्छेद 28 में कुछ ऐसे प्रावधान किए गए हैं जो संस्थाओं में धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित हैं जो इस प्रकार हैं

1 .राजनीति से पोषित शिक्षण संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी

2 .यह बात ऐसे शिक्षण संस्था पर लागू नहीं होती जिसका प्रशासन यद्यपि राज्य करता है परंतु जिसकी स्थापना के अधीन हुई हो जिसके अनुसार धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है

3. राज्य से सहायता प्राप्त किसी शिक्षण संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में शामिल होने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता जब तक कि उस व्यक्ति ने यदि वह वयस्क नहीं है तो उसके अभिभावक ने अपनी सहमति न दी हो।

डॉ आर.एं. त्रिवेदी और एम.पी. राय के अनुसार विश्व के अन्य किसी भी संविधान के द्वारा अल्पसंख्यकों को धार्मिक सांस्कृतिक और शैक्षणिक अधिकार को उस हद तक संवैधानिक संरक्षण नहीं दिया गया है जैसा कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 29 और अनुच्छेद 30 में प्रदान किया गया है।

अनुच्छेद 29 से भारत या उसके किसी भाग के निवासी को अपनी भाषा लिपि और संस्कृति को बनाए रखने का अधिकार है।

अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य की निधि से सहायता प्राप्त किसी भी शिक्षण संस्था में प्रवेश से किसी नागरिक को केवल धर्म मूल वंश भाषा या इनमें से किसी भी प्रकार के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

इसी प्रकार अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और उसके प्रशासन के संबंध में अधिकार प्रदान करता है ।जो इस प्रकार है धार्मिक या भाषाई अल्पसंख्यक को अपनी रूचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा। राज्य शिक्षण संस्थाओं को सहायता देने में धर्म या भाषा के आधार पर भेद नहीं करेगा।

इस प्रकार मौलिक अधिकारों से संबंधित प्रावधान भारत को एक पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में स्थापित करने का प्रावधान करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द कब जोड़ा गया ?
2. भारतीय संविधान की प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द किस संवैधानिक संशोधन से आया?

7.5 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है। जहां एक तरफ राज्य को प्रस्तावना में बंधुता और बंधुता बढ़ाने के लिए और पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की घोषणा करता है।वही संविधान के अन्य भागों में विशेष रुप से मौलिक अधिकार के भाग में पंथनिरपेक्ष राज्य के समर्थन में अनेक मौलिक अधिकारों का प्रावधान करता है। इनमें एक तरफ सभी को कानून के समक्ष समान घोषित करते हैं और संविधान की संविधान द्वारा समान संरक्षण प्रदान करने की बात करते हैं ,तो दूसरी तरफ धर्म के आधार पर भी विभेद का निषेध का प्रावधान करते हैं।इसके आगे बढ़ते हुए सरकारी पदों में नियुक्ति के मामले में सभी प्रकार के विवादों को निषेध करते हुए सभी को समान अवसर प्रदान करने के प्रावधान किए गए हैं। अनुच्छेद 25 से अनुच्छेद 28 तक सभी को अपनी रूचि के धर्म को मानने और उसके अनुरूप धार्मिक मामले में प्रबंध की क्षमता प्रदान की गई है। इसको प्रोत्साहन करने के लिए उसके आय को कर से मुक्ति प्रदान करते हैं जो धर्म की वृद्धि के लिए व्यय किया जाता है। इससे भी आगे बढ़ते हुए सभी को अपनी पसंद की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना उसके संचालन के अधिकार के साथ अपनी भाषा लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार प्रदान करते हैं। इन सभी अधिकारों की सुरक्षा के लिए अनुच्छेद 32 के अनुसार संवैधानिक उपचारों के अधिकार का प्रावधान करते हैं इसके तहत किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन होने पर इसके अनुसार सर्वोच्च न्यायालय में जाने और न्याय पाने का सभी नागरिकों को समान अधिकार है।अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करता है।

7.6 शब्दावली

पंथनिरपेक्ष – राज्य का अपना कोई पंथ न होना , सभी पंथों के साथ सामान व्यवहार.

संदाय - Peyment

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 1977 2. 42 वां संशोधन

7.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति- डॉ रूपा मंगलानी

2. भारतीय सरकार एवं राजनीति- त्रिवेदी एवं राय

3. भारतीय शासन एवं राजनीति- महेन्द्र प्रताप सिंह

7.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भारतीय संविधान- ब्रज किशोर शर्मा

2. भारतीय संविधान- दुर्गादास बसु

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में पंथनिरपेक्षता पर निबंध लिखिए|

इकाई 8 : राष्ट्रीय एकीकरण, बाधक तत्व , एकीकरण के उपाय

8 .1 प्रस्तावना

8 .2 उद्देश्य

8 .3 राष्ट्रीय एकीकरण अर्थ

8 .4 राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक तत्व

8 .4.1 सांप्रदायिक वैमनस्य

8 .4.2 सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जातिवाद

8 .4.3 भाषागत क्षेत्रवाद

8 .4.4 क्षेत्रीयतावाद

8 .4.5 आर्थिक असमानता

8 .5 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय

8 .6 शब्दावली

8 .7 सारांश

8 .8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8 .9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8 .10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

8 .11 निबंधात्मक प्रश्न

8 .1 प्रस्तावना

भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतन्त्र संप्रभु राष्ट्र बना । इसी के साथ एक और घटना हुई , देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है । वह है भारत का विभाजन । इस विभाजन का आधार पूजा पद्धति में भिन्नता के आधार पर हुआ । दूसरे शब्दों में भारत में दूसरा सबसे बड़ा सम्प्रदाय इस्लाम आज भी है , आजादी के समय भी था । इस्लाम के अनुयायियों ने की मांग के आधार पर उनके लिए देश की स्वतंत्रता के साथ एक ऐसे देश का निर्माण हुआ । जिसे आज पाकिस्तान के नाम से जानते हैं ।

इसके साथ यह भी जानना आवश्यक है की देश की आजादी के साथ ही देश में 500 से अधिक देशी रियासतों का भारत में विलय हुआ जिसमें कुछ के लिए सैन्य कार्यवाही भी करनी पडी है । इसी के साथ यह भी एक पहलू है की भारत में बहुत अधिक विविधता है । यह विविधता सम्प्रदाय , भाषा , जाति,संस्कृति आदि से जुडी है । इस लिए स्वतंत्रता के पश्चात देश के विभाजन होने के बाद भी एक संविधान के द्वारा देश में इन विविधता को एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया गया है । जिसमें वर्णित है की सभी भारतीय नागरिक सामान हैं सभी के सामान सामाजिक सांस्कृतिक और राजनीतिक अधिकार हैं ।

8 .2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1. राष्ट्रीय एकीकरण के अर्थ को जान सकेंगे।
2. इसके बाधक तत्वों के विविध पक्षों का अध्ययन कर सकेंगे।
3. एकीकरण के बाधक तत्वों के निराकरण के उपायों को भी जान सकेंगे।

8 .3 राष्ट्रीय एकीकरण अर्थ

राष्ट्रीय एकीकरण यदि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले विभिन्न घटकों को एक सूत्र में पिरोने का नाम ही राष्ट्रीय एकीकरण है। और अधिक स्पष्ट करने के लिए यहां यह जानना भी नितांत आवश्यक है भारत में जाति, धर्म, भाषा. क्षेत्र, भौगोलिक संरचना में भिन्नता, इस भिन्नता के साथ सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता आदि विविधता में पाई जाती हैं। जब राष्ट्रीय एकीकरण की बात होती है तो इन विविधताओं को समाप्त करके एक बनाने की बात नहीं है। वरन इन विविधताओं को बनाए रखते हुए सभी को एक सूत्र में पिरोने की बात है। जैसे एक माला में 108 दाने होते हैं अलग अलग होने पर न तो उनका महत्व है, ना बहुत उपयोगिता, न किसी निश्चित परिणाम की स्थिति उत्पन्न करने वाले होते हैं। जबकि उस माला के समस्त दानों को जब एक सूत्र में पिरोया जाता है तभी वह माला बनती है ,तभी उसे पूजा प्रणालियों के विविध पक्षों में उपयोग कर पाते हैं।

इसलिए यहां एकीकरण का तात्पर्य समस्त विविधताओं को एक सूत्र में पिरोना है। इसी को ध्यान में रखते हुए विविधता को सम्मान मिले देश में संघात्मक शासन प्रणाली अपनाई गई। क्योंकि संघात्मक शासन प्रणाली एक सर्वोच्च संविधान के द्वारा ,केंद्र और राज्य दोनों को शक्तियां प्रदान करती है। यह दोनों अपनी शक्तियों के दायरे में स्वतंत्र पूर्वक कार्य करते हैं। तथा इस विविधता पूर्ण राज्यों को एक सूत्र में पिरोने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई है। और राज्य के स्तर पर भी राज्य के अंतर्गत की विविधता को एक सूत्र में पिरोने के लिए भी राज्य में भी संसदीय शासन प्रणाली की स्थापना की गई। क्योंकि संसदीय शासन प्रणाली में वास्तविक कार्यपालिका मंत्रिपरिषद होती है और मंत्रिपरिषद के गठन में केंद्र के स्तर पर प्रधानमंत्री और राज्य के स्तर पर मुख्यमंत्री इस बात का ध्यान रखते हैं की सभी जाति धर्म भाषा क्षेत्र के प्रतिनिधियों को मंत्रिपरिषद में स्थान मिल सके, सरकार में स्थान मिल सके ,जिससे उन्हें एहसास हो की उनका प्रतिनिधि सरकार में है इस माध्यम से वह स्वयं सरकार में हिस्सेदार है।

8 .4 राष्ट्रीय एकीकरण में बाधक तत्व

इसमें एक विषय का अध्ययन और उल्लेखनीय है स्वतंत्रता के पश्चात देश में एक ऐसी शासन प्रणाली की स्थापना की गई जिसमें सभी को समान सामाजिक राजनीतिक अधिकार प्रदान किए गए और अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए सभी को अवसर प्रदान किए गए। अपने लिए सुविधाओं के विस्तार के लिए सभी के अवसर प्रदान किए गए। समान राजनीतिक अधिकार ने विभिन्न जातिय धार्मिक समूह एकीकरण और विखंडन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। जिससे कहीं विभिन्न समूहों में नज़दीकियां दिखाई दी, तो कई समूह में बड़े तनाव और वैमनस्य की स्थितियां उत्पन्न हुई। यह जाति धर्म भाषा क्षेत्र सभी आधार पर दिखाई दिया ,क्योंकि संसदीय लोकतंत्र अपनाया गया जिसमें बहुमत

प्राप्त दल को सरकार बनाने का अधिकार होता है। इसलिए बहुमत प्राप्ति के लिए विभिन्न जातियों के एकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई लेकिन इस एकीकरण परंतु इसके साथ साथ विघटन की भी प्रक्रिया भी बहुत दिखाई दी ।जिससे देश के विभिन्न हिस्सों में देश की विविधताओं को एक सूत्र में पिरोने के लिए जो प्रावधान भारतीय संविधान में किए गए और जिन की कल्पना संविधान निर्माताओं ने की उसमें बहुत सी बाधाएं उत्पन्न होती हुई। जिन्हें राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में बाधाओं के रूप में चिन्हित करके अध्ययन किया जा सकता है। निम्नलिखित है---

8 .4.1 सांप्रदायिक वैमनस्य

जैसा कि हमने ऊपर अध्ययन में देखा की भारत में विविधता पाई जाती है यहां विषय के संदर्भ को ध्यान में रखते हुए यह कहना है भारत में पूजा पद्धतियों को लेकर के बहुत ही भिन्नता पाई जाती है इस बात का और इसके प्रभाव का अध्ययन करने से पहले यह भी जानना नितांत आवश्यक है ,की लंबे संघर्ष के उपरांत देश को 15 अगस्त 1947 को सफलता प्राप्त हुई। लेकिन इस स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ एक बहुत बड़े दुखद विभीषिका से भी गुजर रहा था देश का सांप्रदायिक आधार पर विभाजन । अर्थात मुस्लिम धर्म के आधार पर एक निश्चित क्षेत्र में अपने राज्य की स्थापना का अधिकार प्राप्त हुआ ।जिससे पाकिस्तान राज्य का उदय हुआ । कई बार जब हम संप्रदाय की बात करते हैं प्रथम दृष्टया हिंदू और मुसलमान के बीच तनाव तक ही सीमित रह जाते हैं ।जबकि विभिन्न संप्रदायों के बीच आंतरिक रूप से उप संप्रदायों में भी तनाव और संघर्ष बहुत दिखाई देता है। जिससे देश के विभिन्न हिस्सों में बहुत से दंगे हुए हैं । जिसमें शिया और सुन्नी के बीच का वैमनस्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है साथ ही हिंदू और मुसलमानों के वैमनस्य से देश के दुखद विभाजन के साथ ही दो बड़े संप्रदायों विशेष तौर से हिंदू और मुस्लिम के बीच सामाजिक संबंधों में अविश्वास की खाई उत्पन्न हुई ।जिन कारणों से देश के विभिन्न हिस्सों में बहुत से दंगे होने का कारण, इस वजह से देश सांप्रदायिक आधार पर एक सूत्र में पिरोने की प्रक्रिया में बहुत सी बाधाएं उत्पन्न हुई ।जिससे राष्ट्रीय एकीकरण की एक प्रमुख बाधा के रूप में चिन्हित किया जा सकता है।

8 .4.2 सामाजिक और राजनीतिक जीवन में जातिवाद

भारत में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली अपनाई गई है ।जिसने सभी भारतीय नागरिकों को समान राजनीति का अधिकार प्रदान किए ।सभी के मतों का मूल्य समान , सभी को समान रुप से प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित होने का अधिकार प्रदान किया गया है ।परंतु परंपरागत भारतीय सामाजिक संरचना जो पदसोपान आधार पर संगठित रही है ।उनमें भी उनके बीच सामाजिक और राजनीतिक बहुत दूरियां रही है। लेकिन वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली में सफलता के लिए उनको आपस में एक दूसरे के करीब आने की परिस्थितियां उत्पन्न हुई। लेकिन इस करीब आने की प्रक्रिया में जहां तक हासिये रही हुई जातियों ने संगठित होकर के प्रभुत्व संपन्न जातियों से राजनीतिक प्रतिस्पर्धा को

तत्पर हुई ,तो दूसरी तरफ प्रभुत्वसाली जातियों को अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए आपस में प्रतिस्पर्धा शुरू हुई और परंपरागत रूप से हासिये की जातियों को अपनी तरफ मोड़ने का कार्य प्रारंभ हुआ ।किस प्रकार प्रभावशाली जातियों में आपसी तनाव और प्रभावशाली जातियों के विभिन्न घटकों और हासिये की जातियों में मुख्यधारा से वंचित जातियों के बीच वैमनस्य दिखाई दिया। जिससे कई बार तनाव और हिंसक तनाव दिखाई देता है ।इसने भी राष्ट्रीय एकीकरण की प्रक्रिया में बहुत बाधा उत्पन्न की है।

8 .4.3 भाषागत क्षेत्रवाद

भारत में बहुत सी विविधताएँ पाई जाती हैं। उनमें एक है एक भाषायी विविधता भी है। भाषा संस्कृति की वाहक होती है। भारतीय संविधान की अनुसूची में 22 भाषाओं का उल्लेख है, जिससे इनको संरक्षण मिल सके और सामाजिक सांस्कृतिक विविधता को सम्मानजनक स्थान मिल सके ।यद्यपि देश में भाषाओं की संख्या बहुत अधिक है जिससे सांस्कृतिक भिन्नता भी दिखाई देती है। भाषायी आधार पर लोगों को एकीकृत करना या फिर किसी क्षेत्र का गठन करना क्षेत्रवाद को बढ़ावा देने वाले कारणों में से एक है। भाषायी विवाद स्वतंत्रता से पूर्व भी प्रमुख राजनीतिक मुद्दा बना रहा है। वर्ष 1920 में कांग्रेस पार्टी द्वारा भाषायी आधार पर राज्यों के गठन की मांग की गई। वर्ष 1927 में नेहरू रिपोर्ट में इस मांग को फिर से दोहराया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सबसे विवादित विषय भाषायी आधार पर राज्यों का पुनर्गठन था अत: इस विवाद को समाप्त करने के लिये वर्ष 1948 में धर आयोग का गठन किया गया तथा इसके बाद जे.वी.पी. समिति ने भी भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की सिफारिश की। इसी क्रम में 1अक्तूबर,1953 को भाषायी आधार पर पहले राज्य के रूप में आंध्रप्रदेश का गठन किया गया। भाषायी आधार पर राज्यों की मांग को पूरा करने के लिये वर्ष 1956 में 'राज्य पुनर्गठन आयोग' की स्थापना की गई। इसके बाद अन्य क्षेत्रों में भी भाषायी आधार पर अलग राज्यों के गठन की मांग उठने लगी तथा आंदोलन प्रारंभ हो गए। इसके चलते वर्ष 1960 में महाराष्ट्र को दो भागों में बाँट दिया गया, वर्ष 1966 में पंजाब का विभाजन भी दो हिस्सों में कर दिया गया। इस प्रकार भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने क्षेत्रवाद को उत्पन्न करने तथा इसे विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

8 .4.4 क्षेत्रीयतावाद

क्षेत्रवाद एक विचारधारा है जिसका संबंध ऐसे क्षेत्र से होता है जो धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक कारणों से अपने पृथक अस्तित्व के लिये जाग्रत होती है या ऐसे क्षेत्र की पृथकता को बनाए रखने के लिये प्रयासरत रहती है। इसमें राजनीतिक, प्रशासनिक, सांस्कृतिक और भाषायी आधार पर क्षेत्रों का विभाजन इत्यादि से संबंधित मुद्दों को शामिल किया जा सकता है। जब क्षेत्रवाद की विचारधारा को किसी क्षेत्र विशेष के विकास से जोड़कर देखा जाता है तो यह अवधारणा

नकारात्मक बन जाती है।भारतीय संविधान के द्वारा सभी अल्पसंख्यकों को अपनी भाषा लिपि और संस्कृत को सुरक्षित रखने और संवर्धित करने का अधिकार प्रदान किया है तथा अन्य को धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान किए गए। परंतु कई बार भाषा और संस्कृति की भिन्नता देश के अन्य हिस्से की भाषा और संस्कृति की भिन्नता को क्षेत्रीय भिन्नता मानते हुए अपने को पृथक मानते हुए दिखाई देते है । उसके आधार पर एक नवीन राज्य के निर्माण की कल्पना की जाती है ।इसके आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में समय-समय पर बहुत ही हिंसक संघर्ष हुए हैं। देश में क्षेत्रवाद के आधार पर राज्य का पुनर्गठन हुआ है । उत्तर प्रदेश से उत्तरांचल, मध्यप्रदेश से छत्तीसगढ़ , बिहार से झारखंड अलग इकाई के रूप में गठन किया गया । हालाँकि यह कार्य प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से भी किया गया है।

देश के अन्य हिस्सों में बंगाल में गोरखालैंड और उत्तर-पूर्व के राज्यों में विशेष रुप से नागालैंड, मेघालय, मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम में इस तरह की मांगे दिखाई देती रहीं हैं । साथ ही महाराष्ट्र के विदर्भ, कर्नाटक के बेलगांव तमिलनाडु में द्रवणीस्थान, पंजाब में खालिस्तान क्षेत्रीयतावादी मांगे समय-समय पर उठती रही है जो राष्ट्रीय एकीकरण के बजाय राष्ट्रीय विघटन को प्रोत्साहित करने वाले कारकों को बढ़ावा दे रही हैं । इस प्रकार से राष्ट्रीय एकीकरण की दिशा में क्षेत्रीय तत्व विघटनकारी और हानिकारक है इसलिए आंदोलनों के निराकरण की नितांत आवश्यकता है

8 .4.5 आर्थिक असमानता

देश को लंबे संघर्ष के बाद आजादी मिली और उस संघर्ष के पीछे सपना था देश की स्वतंत्रता । स्वतंत्र भारत में सभी नागरिकों को सम्मानजनक सामाजिक आर्थिक राजनीतिक जीवन प्राप्त हो, ताकि वह अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कार्य कर सकें और एक गरिमामय जीवन जी सके । इस बात का उल्लेख भारतीय संविधान की प्रस्तावना में भी है और संविधान के विभिन्न भागों में आर्थिक गतिविधियों के संचालन की प्रक्रिया का उल्लेख मिलता है। परन्तु भारत में जिस प्रकार की विकास एवं उत्पादन प्रक्रिया अपनाई गई उसमें ग्रामीण क्षेत्र की उपेक्षा हुई और नगरीय क्षेत्र का तेजी से विकास। जिससे गांव और नगर में खाई बनी और तनाव उत्पन्न होने लगा । साथ ही नगरीय क्षेत्रों में भी संपन्न और विभिन्न वर्ग उत्पन्न हुए । उनके बीच भी तनाव उत्पन्न हुए । यही नहीं क्षेत्र उत्पादन प्रणालियों में असमानता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में भी आर्थिक संसाधनों के वितरण में देश में असमानता दिखाई देती है । जिससे विकास की धारा में कुछ क्षेत्र अगर बहुत आगे हैं तो कुछ क्षेत्र बहुत पीछे छूट गए । इसी प्रकार से कुछ समुदाय बहुत आगे तो कुछ समुदाय बहुत पीछे छूट गए है। इसी प्रकार से नगरीय कुछ क्षेत्र काफी आगे निकल गए तो कुछ नगर विकास की संक्रमण कालीन स्थिति में हैं । गांव विकास की मुख्यधारा से नहीं जुड़ पाए। जिसके कारण गांव के लोग लगातार

पलायन को मजबूर है और नगरों की जनसंख्या लगातार बढ़ रही है यह सभी घटक राष्ट्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करने के बजाय उस में बाधा उत्पन्न हुई है।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत की स्वतंत्रता के दिन तक निमं में से कौन सी देशी रियासतें भारत में शामिल नहीं हुई थी?
2. रियासती विभाग के प्रशासनिक सचिव कौन थे?
3. राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किस तिथि को किया गया था?
4. भारत की स्वतंत्रता के समय देश के एकीकरण हेतु गठित रियासती विभाग के मुखिया थे?

8 .6 राष्ट्रीय एकीकरण के उपाय

भारतीय संविधान में प्रावधानों द्वारा प्रोत्साहित और सुनिश्चित किया गया है। यह सहमति हुई है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के लक्ष्य समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र, स्वतंत्रता, समानता, न्याय और बंधुत्व होने चाहिए। नागरिकों को बुनियादी अधिकार दिए गए हैं, जबकि मौलिक दायित्व भी स्थापित किए गए हैं। राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के तहत राज्य को निष्पक्ष आर्थिक विकास को आगे बढ़ाने, सामाजिक भेदभाव को दूर करने और वैश्विक शांति और सुरक्षा को आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, कई संस्थानों और प्रक्रियाओं को नियंत्रित करने वाले नियम राष्ट्रीय एकीकरण पर केंद्रित हैं। सरकारें भी राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देने के प्रयास कर रही हैं। राष्ट्रीय और एकीकरण से संबंधित मुद्दों पर विचार करने और उठाए जाने वाले उपयुक्त उपायों की सिफारिश करने के लिए एक राष्ट्रीय एकीकरण परिषद की स्थापना की गई है।

भारत के राष्ट्रीय पर्व स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गांधी जयंती और अन्य राष्ट्रीय अवकाश, राष्ट्र की एकजुटता के बंधन को मजबूत करते हैं । अपनी भाषा, धर्म या संस्कृति से अलग, पूरे देश में भारतीय इन त्योहारों को मनाते हैं। हर साल 19 नवंबर को, हम राष्ट्रीय एकता दिवस भी मनाते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय प्रतीक हमारी साझा पहचान हैं। यही कारण है कि इस बात पर जोर दिया जाता है कि इन प्रतीकों को उचित सम्मान के साथ प्रस्तुत करना कितना महत्वपूर्ण है।राष्ट्रीय एकीकरण को आगे बढ़ाने के लिए सरकार को क्षेत्रवाद और अलगाववाद के खिलाफ सख्त कदम उठाने चाहिए। संघीय प्राधिकरण द्वारा क्षेत्रवाद और अलगाववाद को मजबूती से दबाया जाना चाहिए। सरकार को कभी भी क्षेत्रीय दबावों के आगे नहीं झुकना चाहिए, खासकर तब जब वे ताकतें हिंसा और धमकी का रूप ले लें।

सभी भाषाओं को महत्व दिया जाना चाहिए हालाँकि भाषाई कट्टरता को दबा दिया जाना चाहिए। हिंदी, हमारी साझा राष्ट्रीय भाषा है इसको बढ़ावा देकर एकता की भावना पैदा करना, भाषाई कट्टरता से निपटने की सबसे अच्छी रणनीतियों में से एक है। अपनी भाषा के बिना एक देश एक देश

नहीं है, और यह कभी भी सही मायने में एकीकृत नहीं हो सकता। वह समय बहुत पहले चला गया जब देश के कुछ क्षेत्रों में हिंदी का हिंसक विरोध किया जाता था। यहाँ तक कि तमिलनाडु की आबादी भी धीरे-धीरे हिंदी की राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रमुख स्थिति को पहचानने लगी है। हिंदी और किसी राज्य की स्थानीय भाषा को अधिक आम बनाकर, हम देश को एकजुट कर सकते हैं। दोनों को एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने के बजाय एक दूसरे का पूरक होना चाहिए।

जनसंचार माध्यम किसी देश की राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसे लोकतंत्र का चौथा स्तंभ भी कहा जाता है। राष्ट्रीय एकता की लड़ाई सभी के मन में लड़ी जानी चाहिए। समाचार पत्र, रेडियो और टेलीविजन जैसे जनसंचार के सभी माध्यमों का उपयोग राष्ट्रीय एकता और अखंडता को बढ़ावा देने के लिए किया जाना चाहिए।

अल्पसंख्यक समुदाय के प्रति बहुसंख्यक समुदाय के दृष्टिकोण में सुधार होना चाहिए। अल्पसंख्यकों को देश की

मुख्यधारा में शामिल करने के लिए ऐसा किया जाना चाहिए। अल्पसंख्यक पृष्ठभूमि के छात्रों को सभी रोजगार और सेवाओं के लिए समान अवसर प्रदान किए जाने चाहिए

राष्ट्रीय एकीकरण को प्राप्त करने के लिए सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है। सामाजिक एकीकरण को प्राप्त करने के लिए भाईचारे को बढ़ावा देने की आवश्यकता है.

देश में धन और आय का वितरण असमान नही होना चाहिए हो, जहाँ ऐसा होगा वहां कभी भी एकजुटता या सौहार्द की भावना नहीं हो सकती। तीव्र आर्थिक विकास के लिए सभी उपलब्ध संसाधनों का उपयोग करना राष्ट्रीय एकीकरण प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका है।

8 .7 शब्दावली

राष्ट्रीय एकीकरण- यदि शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले विभिन्न घटकों को एक सूत्र में पिरोने का नाम ही राष्ट्रीय एकीकरण है।

8.8 सारांश

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत में विविधता है। विविधता के कारण अपने लक्ष्य में भिन्नता पाई गई , जिससे वैमनस्य उत्पन्न हुआ। उस वैमनस्य ने संघर्ष को बढ़ावा दिया। जिसने राष्ट्रीय एकीकरण के दिशा में बाधक का कार्य किया है। धर्म, जाति, भाषा संस्कृति, पूजा पद्धति इस प्रकार की भिन्नता से उत्पन्न समस्याएं सामाजिक अधिक थी राजनीतिक कम। सामाजिक कहने के पीछे कारण यह है इस समाज के विभिन्न घटकों के बीच आपसी संबंधों में जीवन शैलीगत तनाव है। उनके निराकरण के लिए आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए इसलिए

जहां तक राष्ट्रीय एकीकरण के बाधक तत्वों के निराकरण का सवाल है तो आवश्यकता इस बात की है। जागरूक जनमानस होने से जनसामान्य के बीच भिन्नता को सहज स्वीकारोक्ति मिलेगी और उससे तनाव और संघर्ष की स्थिति नहीं होगी।

इन्ही बातों को ध्यान में रखकर संविधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकार के भाग में सभी भारतीय नागरिकों को सामान घोषित किया है। जिसमें सभी के समान सामाजिक अधिकार की बात की गई है। साथ ही लोक नियोजन में अर्थात सरकारी पदों पर नियुक्ति में सभी को समान अधिकार प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। समस्त नागरिकों को सामान स्वतंत्रता के अधिकार प्रदान किये गये हैं। साम्प्रदायिक विविधता को ध्यान में रखते हुए सभी को अंतःकरण की सवतंत्रता का अधिकार है अर्थात अपनी पसंद की पूजा पद्धति के अनुकरण का अधिकार है। भाषा और संस्कृति की सुरक्षा के लिए अल्पसंख्यकों को अधिकार प्रदान किये गए हैं। यद्यपि इस प्रावधान की आलोचना भी की जाती है की क्या केवल अल्पसंख्यकों को ही यह अधिकार होना चाहिए अन्य को नहीं।फिर अगर अन्य को यह अधिकार भारतीय नागरिक के रूप में ही स्वतः प्राप्त हो जाते हैं तो यह बात तो अल्पसंख्यकों के सन्दर्भ में लागू होती है। साथ ही अभी तक मुख्यधारा से वंचित अनुसूचित जाति और जनजाति को राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए स्थान आरक्षित किये गए हैं।

लेकिन एकीकरण के कार्य को प्रभावशाली तरीके से आगे ले जाने के लिए जन जागरण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय और मानवीय सरोकारों से युक्त एक स्वतंत्र मीडिया तंत्र का भी होना नितांत आवश्यक है ,जो निष्पक्षता से इस भिन्नता को वैमनस्य ना देने के लिए सामाजिक और राजनीतिक शिक्षण के कार्य को आगे बढ़ाएं। इस दिशा में भारत ने अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है जिसमें सूचना के अधिकार को देखा जा सकता है। साथ ही आवश्यकता इस बात की भी है स्वस्थ लोकतांत्रिक प्रणाली को आगे बढ़ाया जाए जिसमें निष्पक्ष चुनाव प्रक्रिया का संचालन भी बहुत महत्वपूर्ण है , जिसका सम्पादन सफलतापूर्वक भारत में किया जा रहा है। इस दृष्टि से भारत में बहुत बड़ी सफलता अर्जित की है क्योंकि भारत की चुनाव प्रणाली अपने निष्पक्षता और पारदर्शिता के लिए विश्व विख्यात है। इसी का परिणाम है स्वतंत्रता के पूर्व परंपरागत रूप से हाशिए पर रहने वाली जातियां व सामाजिक समूह आज राजनीति की मुख्यधारा में दिखाई दे रहे हैं और अपनी हिस्सेदारी को प्राप्त कर रहे हैं। लेकिन इस कार्य को और अधिक सफलतापूर्वक तभी संपादित किए जा सकते हैं जब एक स्वस्थ लोकतांत्रिक मानसिकता को आम जन मानता हो। एक स्वस्थ और निष्पक्ष प्रशासनिक तंत्र की स्थापना और विकास की आवश्यकता है जो जन जागरण और सामाजिक एकीकरण तथा राष्ट्रीय एकीकरण के कार्य को आगे बड़ा सके। यद्यपि देश ने इस दिशा में भी अच्छे मुकाम हासिल किए हैं लेकिन अभी बहुत कुछ हासिल किया जाना बाकी है।

8 .9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. कश्मीर, जूनागढ़, हैदराबाद
2. वी. पी. मेनन
3. 22 दिसम्बर 1953
4. सरदार बल्लभ भाई पटेल

8 .10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6. भारत का संविधान-दुर्गादास बसु
7. राजनीति चिंतन की रूपरेख -ओ.पी.गाबा
8. .संपादक-राजकिशोर -भारत का राजनीतिक संकट
9. .सुभाष कश्यप-हमारी संसद
10. .सुभाष कश्यप-हमारा संविधान

8 .11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3. बालमुकुन्द अग्रवाल-हमारी न्यायपलिका
4. एस.एम.सईद-भारतीय राजनीतिक व्यवस्था

8 .12 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय एकीकरण को परिभाषित कीजिये?

2. राष्ट्रीय एकीकरण के बाधक तत्वों और उनके निराकरण के उपायों की विविचना कीजिए।

इकाई 9 : नक्सलवाद

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

9.4 हिंसा और संघर्ष आधार

9.5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ

9.5.1 पहला चरण

9.5.2 दूसरा चरण

9.5.3 तीसरा चरण

9.6 नक्सली संगठन: पीपुल्स वार ग्रुप

9.7 माओइस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर

9.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)

9.9 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज

9.10 नक्सली आंदोलन के कारण

9.11 नक्सलवाद और आतंकवाद

9.12 नक्सली आन्दोलन का सार

9.13 शब्दावली

9.14 सारांश

9.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

9.18 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारत में नक्सलवाद एक ऐतिहासिक समस्या हैं जिसने देश को हिलाकर रख दिया है। 2010 में इस समस्या ने अधिक उग्र रूप धारण कर लिया जब सैकडों पुलिसकर्मी ,नक्सलवादियों के द्वारा मारे गये। भारतीय शासन नक्सलवादी हिंसा को भारत की अखण्डता के लिए एक चुनौती मानता है। वे हिंसा करते हैं, पुलो और रेल ट्रैकों को उडाते है, विध्वंस करते है, धन उगाही करते है, भू-स्वामियों पर हमला करते हैं जो गैर-कानूनी हैं या अनैतिक है। कभी वे स्वयं को साम्यवादी कहते है, कभी नक्सलवादी और कभी माओवादी। भारतीय व्यवस्था को बदलना उनका लक्ष्य है, क्रान्ति उनका नारा है, हिंसा उनका उपकरण है। भारत इनको उग्रवादी कहता है, लड़ाकू (मिलिटेन्ट) कहता हैं लेकिन आंतकवादी कहने से हिचकता है। तर्क यह हैं कि यह आम निर्दोष लोंगों को नहीं मारते। नक्सलवाद पर बीसियों किताबें लिखी गयी हैं उपन्यास छपे है। कही न कही इन पुस्तकों में नक्सलवादियों के प्रति सहानुभूति दिखाई गयी है। उदाहरण के लिए पुलिस द्वारा मारे गये माओवादी नेता आजाद और उमाकांत महतों के प्रति बुद्धिजीवियों और पत्रकारों की सहानुभूति एक उदाहरण है। उदाहरण के लिए महास्वेता देवी का उपन्यास ‘‘ 1084 वें की मां’’ सम्रेश मजूमदार के उपन्यास ‘‘कलबेला’’ और ‘‘कालपुरूष’’ या सखो घोश का ‘‘कोबीतार मुहुरतों’’ ऐसे उपन्यास हैं जो पुलिस के निर्दोश लोंगों पर अत्याचार से भरे पढे है। पश्चिमि बंगाल में सहानुभूति पूरी तरह माआवादियों को आतंकवादी मानने को तैयार नहीं है। उनके अनुसार ‘‘आतंकवादी लोंगों के विरूद्ध हथियारबंद है, जबकि माओवादी राज्य के विरूद्ध है। मानवाधिकार कार्यकर्ता स्वामी अग्निवेश ने नक्सलियों और सरकार के बीच नक्सली नेता चेराकुरी राजकुमार अका, आजाद के माध्यम से बात करना शुरू की लेकिन जब पुलिस ने एक मुठभेढ़ में आजाद को मार डाला तो स्वामी अग्निवेश हताश हो गये। उन्होंने आजाद की मौत को शान्ति पहल के लिए बड़ा आघात बताया। वह मुठभेड़ की न्यायिक जांच चाहते हैं। वह मानते हैं कि संरचनात्मक हिंसा माओवादी हिंसा से ज्यादा खतरनाक है। वह भ्रष्टाचार को हिंसा मानते है। वह जातिवादी टकराव को भारत की वास्तविक हिंसा मानते है। उन्होंने कहा ‘‘माओवादी हत्यारे नहीं है, माओवादी हिंसा राज्य हिंसा के विरूद्ध एक प्रतिशोध है। यदि उनके विरूद्ध बल का प्रयोग होगा तो भारत में गृह - युद्ध छिड़ जायेगा’’।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के उपरान्त आप-

- नक्सलवाद के ऐतिहासिक संदर्भ में को जान पायेंगे।

- नक्सली आंदोलन के चरण, उनका आधार और रणनीति को जन पाएंगे।
- इसके बौद्धिक और राजनीतिक स्वरूप और नेतृत्व को समझने में सक्षम होंगे।
- नक्सली संगठनों को जान पाएंगे।
- नक्सली आंदालनों के कारण और उसके स्वरूप का विश्लेषण कर पाएंगे।

9.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नक्सलवाद शब्द की उत्पत्ति पश्चिमी बंगाल के एक गांव नक्सलबाड़ी से हुई है। यही से एक आंदोलन आरम्भ हुआ जो नक्सलवाद कहलाया। हुआ यह कि कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (मार्क्सवादी) से विद्रोह करके चारू मजूमदार, कानू सान्याल तथा जांगल सान्थाल ने 1967 में एक हिंसात्मक विद्रोह छेड़ा। 18 मई 1967 को सिलिगुडी किसान सभा ने जिसका अध्यक्ष जांगल था भूमिहीनों में भूमि वितरण के लिए हथियार बंद संघर्ष का ऐलान किया। उसी सप्ताह एक बटाईदार पर नक्सलबाडी के समीप भूमि स्वामियों के आदमियों ने भूमि विवाद को लेकर हमला कर दिया। 24 मई को जब एक पुलिस टुकडी कृषक नेताओं को गिरफ्तार करने आयी तो जांगल सन्थाल के नेतृत्व में आदिवासियों के एक समूह ने घात लगाकर हमला कर दिया। जिसमें तीरों की बौछार से एक पुलिस इंस्पैक्टर और ग्याराह नक्सली मारे गये। इस घटना से संथाल आदिवासियों और निर्धन लोंगों को स्थानीय भूस्वामियों के विरूद्ध आंदोलित होने का प्रोत्साहन मिल गया। यहां से नक्सलवाद आरम्भ हो गया।

इस तरह नक्सल, नक्सलाईट या नक्सलवादी कम्यूनिस्ट या साम्यवादी लड़ाकू गुटों के लिए एक वंशनीय (जैनेरिक) शब्द है। यह लड़ाकू भारत के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से बिहार, झारखण्ड, पश्चिमि बंगाल इत्यादि में माओवादी कहलाते हैं। इनके गड़ केरला, उडीसा और आन्ध्र प्रदेश के जिले भी हैं। नक्सली अति-वाम आतिवादी (रेडीकल) साम्यवादी हैं। जिनके विचारों का आधार माओवादी राजनीतिक भावना और विचारधारा है। यह 1967 में भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी) से मतभेद होने के कारण अगल हो गये और इन्होंने भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) बना लिया। पहले इनका आंदोलन पश्चिमी बंगाल तक सीमित रहा, बाद में छत्तीसगढ, उडीसा और मध्यप्रदेश में भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) की सहायता से यह फैल गये।

वर्ष 2009 में नक्सली भारत के 20 राज्यों के 220 जिलों मे सक्रीय थे अर्थात देश का 40 प्रतिशत भाग पर उनका कब्जा था। जिन क्षेत्रों में वे क्रियाशील हैं वह रेड कोरीडोर या लाल गलियारा कहलाता है। 92,000 कि0मी0 पर उनका नियंत्रण है। 20,000 हथियार बंद और इतने ही कार्यकर्ता

है। उनकी बढ़ती गतिविधियों को देखते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उनको भारतीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर आंतरिक खतरा बताया है।

वर्ष 1967 में नक्सलियों ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्यूनिस्ट रेवोल्यूशनरीज (AICCCR) का गठन किया, लेकिन बाद में सी.पी.एम. से अलग हो गये। देश के अनेक क्षेत्रों में इनके आंदोलन का आधार हिंसा हो गया। व्यवहारिक रूप से सभी नक्सली गुटों का उद्भव सी.पी.आई. (एम0एल0) से हुआ है। तब दूसरा गुट पीपुल्स वार ग्रुप था जो पूरी तरह क्रान्तिकारी था। बाद में इसका विलय भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) में हो गया। इस समय इनका नेता नागी रेड्डी था।

9.4 हिंसा और संघर्ष आधार

1970 की दहाई में यह आंदोलन अनेक टुकडो में बट गया। 1980 तक यह अनुमान लगाया गया कि लगभग 30 नक्सली गुट सक्रिय थे। इनकी सदस्यता लगभग 30,000 थी। 2004 गृह विभाग के अनुमान के अनुसार 9,300 ठोस भूमिगत लड़ाकू थे। जिनके पास 6,500 आधुनिक हथियार थे। विदाल हॉल 2006 के अनुसार इस आंदोलन का आधार 2 ,000 सक्रिय उग्र हथियार बंद थे। ये भारत के जंगलो के एक बड़े भाग (1/5) पर काबिज़ थे। इनकी भूमिका गौरिल्लों जैसी है। 30 जिलों में यह सक्रिय है। रॉ के अनुसार 2006 मे नक्सलियों की संख्या 20,000 थी और यह सब हथियार बंद थे।

आज कुछ नक्सलवादी गुट वैज्ञानिक हो गये क्योंकि वे संसदीय चुनावो में भाग लेते हैं जैसे भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) लेकिन भारतीय साम्यवादी दल (माओवादी) और भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी-लेनिनवादी जनशक्ति) हथियार गोरिल्ला युद्ध में लिप्त है।

6 अप्रैल 2010 नक्सलियों ने नक्सलवादी आंदोलन के इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया। जिसमें 76 सुरक्षाकर्मी मारे गये। यह हमला लगभग 1000 नक्सलियों ने छत्तीसगढ़ के दातेवाड़ा जिले के जंगलो में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के जवानों पर किया। 76 मौतों के अतिरिक्त 50 जवान घायल हुए। 9 मई 2010 को दातेवाड़ा-सुखमा सड़क पर एक बस को उड़ा दिया। जिसमें 2 पुलिसवाले और 20 नागरिक मारे गये अपने तीसरे हमले में जो 29 जून को हुआ, छत्तीसगढ़ के नारायणपुर जिले में घात लगाकर सी0आर0पी0एफ0 के 26 जवानों को मार डाला। इससे यह सिद्ध होता हैं कि हाल के दिनों में नक्सलवाद ने एक तरह से राज्य के विरूद्ध युद्ध आरम्भ कर दिया है।

नक्सलवाद का नेतृत्व

जैसा कि लिखा जा चुका हैं नक्सलीय आंदोलन के सबसे प्रभावशाली नेता या गुरू चारू मजूमदार, कानू सानियाल और जांगल संथाल, (कहीं –कहीं जगत संथाल लिखा है) थे। इन नेताओं के नेतृत्व में सी.पी.आई. (एम0एल0) आंदोलन 1971 में अपने शिखर पर पहुच गया। लगभग 3,650 हिंसात्मक घटनांए घटी जिनसे बिहार, आन्ध्र प्रदेश, केरला , तमिलनाडु, पंजाब और उत्तर प्रदेश के कुछ क्षेत्र हिल उठे। लेकिन जब पुलिस तथा सेना ने शिकंजा जकड़ा जिसमें हजारों नक्सली गिरफ्तार हुए या मर गये तथा 1972 में मजूमदार की मृत्यु से नक्सलवाद को झटका लगा। के0पी0 सिंह ने अपने एक निबन्ध ‘‘दि ट्रेजोक्टरी ऑफ दि मूवमेंट’’ में लिखा है: यह काल एक अवधारणात्मक निष्कपट नेतृत्व से सम्पन्न था। इसमें मध्य स्तरीय कार्यकर्ता थे। इसकी अपील न केवल वामपंथ और समाज के वंचित वर्गों के लिए थी, बल्कि एक बडी संख्या में बुद्धिजीवी और छात्र भी इसकी ओर आकर्षित हुए और सहानुभूति रखने लगे। इसको चीन जैसे कुछ देशों से मदद भी मिल रही थी।

9 .5 नक्सली आंदोलन: राजनीतिक और बौद्धिक संदर्भ

9 .5.1 पहला चरण

यह कहना सही होगा कि नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति और इस पर पडने वाले बौद्धिक प्रभावों का परिणाम है। सर्वप्रथम तेलंगाना संघर्ष के संदर्भ में इसको देखा जाता है। तेलंगना में जुलाई 1948 तक, 2500 गांवो को कम्यून्स में संगठित किया गया। यह किसान आंदोलन का एक हिस्सा था जिसे तेलंगना संर्घष कहा गया। इसी समय प्रसिद्ध आन्ध्राथीसेज अस्तित्व में जिसकी मांग थी कि भारतीय क्रान्ति चीन जन युद्ध के रास्ते पर चलना चाहिए। जून 1948 तक वामपंथी अवधारणात्मक दस्तावेज ‘आन्ध्र लेटर’ सामने आया। जिसने नवीन लोकतंत्र के आधार पर एक क्रन्तिकारी रणनीति बनाने का आहवान किया।

1964 में सी.पी.एम., सी.पी.आई. से अलग हो गयी और चुनावों में भाग लेने को फैसला किया और क्रान्तिकारी नीतियों को अपनाने में हथियार बंध संघर्ष स्थगित करने का तब तक के लिए ऐलान किया जब तक कि देश में क्रान्तिकारी परिस्थितियां परिपक्व न हो जायें।

1965-66 में साम्यवादी नेता चारू मजूमदार ने मार्क्स-लेनिन-माओ के विचारों पर आधारित बहुत से लेख लिखे, जिनको बाद में ऐतिहासिक आठ दस्तावेज कहा गया। जो अनंतः नक्सली आदोलन का आधार बना।

इसी दौरान पहला स्वतंत्रता संगठन तेलगु कवि श्री श्री की अध्यक्षता में अस्तित्व में आया। लेकिन भारत-चीन युद्ध के दौरान हजारों साम्यवादियों को जेलो में ठूस दिया गया।

वर्ष 1967 में सी.पी.एम. ने चुनावों में भाग लिया और बंगाल कांग्रेस के साथ मिलकर पश्चिमी बंगाल में एक संयुक्त मौर्चा बनाया। इससे पार्टी में विरोध की लहर दौड गयी। चारू मजूमदार ने सी.पी.एम. पर विश्वासघात का आरोप लगाकर पार्टी छोड़ दी।

25 मई, 1967 को चारू मजूमदार के नेतृत्व में विद्रोही गुट ने पश्चिमी बंगाल के दार्जलिंग जिले के नक्सलबाडी में किसानों का उग्र आंदोलन आरम्भ हुआ। कारण था कि एक आदिवासी युवक पर जिसके पास खेत जोतने का न्यायिक आदेश था जमीदार के गुंडो ने हमला कर दिया। आदिवासियों ने बदले में अपनी भूमि को जबरदस्ती छीनना शुरू कर दिया। सी.पी.आई. (एम) द्वारा समर्थित संयुक्त मोर्चे ने आदिवासियों के आंदोलन को कुचलना शुरू किया। 72 दिनों तक यह विद्रोह चला जिसमें एक पुलिस सब इंस्पेक्टर और 11 आदिवासी मारे गये। केन्द्र में कांग्रेस ने इस दमन का समर्थन किया। घटना की गूंज पूरे देश में हुई और नक्सली आंदोलन ने जन्म ले लिया।

नक्सलवाद की विचारधारा देखते ही देखते पूरे भारत में फैल गयी। पूरे पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश और बिहार में लोंगों ने संघर्ष में भाग लेना आरम्भ किया।

आंदोलन का बौद्धिक स्तर भी सामने आया जब ''लिबरेशन'' और देशभक्ति, बंगाली तथा लोकयुद्ध (हिन्दी) जैसी पत्रिकांए सामने आयी। वर्ष 1967 से 1980 तक का समय नक्सलवादी गतिविधियों का प्रथम चरण था। इसका प्रथम चरण मार्क्सवादी-लेनिनवादी-माओवाद पर आधारित था, अर्थात यह 'वैचारिक और आदर्शवादी' आंदोलन का चरण रहा है। इस चरण में नक्सलवादियों को 'ज़मीनी अनुभव तथा अनुमान की कमी' देखने को मिली। इस चरण में नक्सलियों को ''राष्ट्रीय पहचान'' अवश्य मिली।

9 .5.2 दूसरा चरण

वर्ष1967 में तमिलनाडु, केरला, उत्तर प्रदेश, बिहार, कर्नाटका, उडीसा और पश्चिमी बंगाल में कामरेडो ने ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ रेवोल्यूशनरीज की स्थापना सी.पी.आई. (एम.) के अन्तर्गत की। 4 मई 1968 इसका नाम ऑल इण्डिया कोआर्डिनेशन कमेटी ऑफ कम्यूनिस्ट रेवोल्यूशनरीज पडा। इसके संयोजक एस0राय0 चौधरी थे। इस नयी संस्था ने चुनाव के बहिष्कार का आहवान किया। बाद में इस कमेटी मे विभाजन हो गया।

22 अप्रैल 1969 को नई कमेटी के एक निर्णये के अनुसार एक नयी पार्टी बनायी गयी। जिसका नाम सी.पी.आई. (एम.एल.) पड़ा। लेनिन के विचार इसके प्रेरणा स्रोत थे। चारू मजूमदार इस पार्टी के केन्द्रीय दल के सचिव चुने गये 1 मई 1969 को पार्टी के दूसरे बड़े नेता कामरेड कानू सान्याल ने कलकत्ते की शहीद मीनार मैदान में पार्टी की घोषणा के लिए एक बडी मीटिंग की। सी.पी.आई. (एम) ने इस मीटिंग में गड़ बड़ फैलाने की कोशिश की परिणाम स्वरूप सी.पी.आई. (एम.) और

सी.पी.आई. (एम.एल.) में पहली हिंसात्मक झड़प हुई। इस बीच देवरा-गोपीवल्लभपुरा (पश्चिमी बंगाल), मूसल (बिहार, लखीमपुरखीरी, (उत्तर प्रदेश) तथा श्रीकाकूलम (आन्ध्र प्रदेश) में गौरिल्ला जोन बन गये।

26-27 मई, 1969 को आंध्र पुलिस ने कामरेड पंचादरी कृष्णामूर्ति और छः अन्य क्रान्तिकारियों को मार डाला। यहां से श्री काकुलम संघर्ष की लहर पूरे आंध्र में फैल गयी। 20 अक्टूबर को माओवादी साम्यवादी केन्द्र की स्थापना कन्हाई चटर्जी के नेतृत्व में हुई जिसने नक्सलवादी आंदोलन को समर्थन दिया।

27 अप्रेल, 1970 को देशभारती प्रकाशन के दफ्तर पर छापा मारा गया। सी.पी.आई. (एम.एल.) भूमिगत हो गया। 11 मई को पहला सी.पी.आई. (एम.एल.) की कांग्रेस कलकत्ते में हुई। यह भूमिगत थी। कामरेड, चारू मजूमदार इसके सह सचिव चुने गये। 10 जुलाई को कामरेड बेमपतापु, सत्यनारायण और अदिबतिया कैलासम, जो श्री काकुलम विद्रोह के नेता थे, पुलिस द्वारा मार डाले गये। लेकिन श्री काकूलम का आंदोलन 1975 तक चलता रहा। इस पूरे आंदोलन को साहित्यकारों और कलाकारों का समर्थन मिलता रहा।

दूसरी ओर बांगलादेश युद्ध के दौरान सेना ने पश्चिमी बंगाल में नक्सली आंदोलन को कुचलने का पूरा प्रयास किया। वीर भूमि का विद्रोह आंदोलन की चरम सीमा थी।

जुलाई 1972 मे चारू मजूमदार को कलकत्ते में गिरफतार कर लिया गया और उनकी लाल बाजार थाने की हवालात में 28 जुलाई को मृत्यु हो गयी। क्रान्तिकारी आंदोलन को मजूमदार की मृत्यू से बड़ा धक्का लगा। सी.पी.आई. (एम.एल.) की केन्द्रीय सत्ता छिन्न-भिन्न हो गयी।

संघर्ष का अंत नहीं हुआ। बौद्धिक स्तर पर आंदोलन नहीं रूका। अगस्त 1972 में पुकार राजनीतिक पत्रिका आन्ध्र प्रदेश से निकाली गयी।

1973 में गुरिल्ला संघर्ष फिर आरम्भ हो गया। इस समय यह केन्द्रीय बिहार और तेलंगाना में चला। मार्च में आन्ध्र प्रदेश सिविल लिबर्टीज को श्री श्री के नेतृत्व में स्थापना हुई।

12 अक्टूबर 1974 में आन्ध्र प्रदेश में एक अतिवादी छात्र संघ की स्थापना हुई। आपात काल में यह पुलिस के जुल्म का शिकार हुआ परन्तु इसका अंत नहीं हुआ।

1975 में आपात काल की घोषणा हुई। पुलिस ने मौके का फायदा उठाकर वामपंथी आंदोलन को कुचलने का पूरी तरह प्रयास किया। सितम्बर में सैन्ट्रल ऑर्गनाइजिंग कमेटी ने अपना आंदोलन वापस ले लिया और एक राजनीति के तहत रोड टू रेव्यूलूशन का दस्तावेज प्रस्तुत किया लेकिन भोजपुर और नक्सलबाडी में खूनी संघर्ष जारी रहा।

फरवरी 1977 में आंध्र प्रदेश में क्रान्तिकारियो ने तेलंगाना रीजनल कांफ्रेंस की स्थापना करके करीम नगर और आदिलाबाद किसान आंदोलन के बीज बोए। तय यह भी किया गया कि नयी भर्ती के लिए राजनीतिक कक्षांए चलायी जांए और टुकड़ियों को हथियार बंद संघर्ष के लिए जंगलो में भेजा जाये।

बाद में यह तय किया गया कि गोरिल्ला कार्यवाही को कुछ सीमित किया जाये और जनआंदोलन आरम्भ किया जाये। परिणाम स्वरूप 7 सितम्बर को प्रसिद्ध जगीतियाल मार्च का आंध्र प्रदेश में आयोजन किया गया। जिसमें हजारों लोंगों ने भाग लिया।1979 से लेकर 1988 एम.सी.सी. ने अपना ध्यान बिहार में केन्द्रित किया। बिहार-बंगाल स्पेशल ऐरिया कमेटी स्थापित की गयी।1980 में कोण्डापली, सीतारमैया ने आध्र प्रदेश में पीपुल्स वार ग्रुप की स्थापना की। आरम्भ में उसका लक्ष्य जन आंदोलन खड़ा करना था। यह आंदोलन केन्द्रीय बिहार मे फैल गया।

वर्ष 1980 से 2004 तक का समय ज़मीनी अनुभव, ज़रुरत और आवश्यकता के आधार पर चलने वाला क्षेत्रीय नक्सली गतिविधियों का दौर था। इस चरण में नक्सलवाद का व्यवहारिक विकास हुआ।

9 .5.3 तीसरा चरण

1981 में पहली राज्यव्यापी रैली बिहार प्रदेश किसान सभा के झण्डे के तले पटना में हुई। इसने राज्य में एक नये राजनीतिक जन आंदोलन का दौर आरम्भ किया। 1985 तक आंदोलन में आसमिया, पिछडे और दलितो को मिलाने का प्रयास किया गया।आपरेशन ब्लू स्टार के बाद पंजाब के सिक्खों की भावनाओं को देखते हुए उन्हें आंदोलन से जोडने का प्रयास किया गया।

आदिवासियों की स्वायत्ता के लिए पीपुल्स डेमोक्रेटिक फ्रन्ट आसाम के करबी आगलंग में अस्तित्व में आया। इसने विधान सभा की पहली सीट जीते।

इस समय दिल्ली में जन संस्कृति मंच की स्थापना की गयी। जिसका उद्देश्य बौद्धिक विकास था।

1986 में बिहार सरकार ने पी.डब्लू.जी.और एम.सी.सी. पर पाबंधी लगा दी।

इसी वर्ष आंदोलन से महिलाओं को जोड़ने का भी प्रयास किया गया और कलकत्ते में राष्ट्रीय महिला अधिवेशन बुलाया गया ताकि क्रान्तिकारी महिलाओं को महिला आंदोलनो को जोड़ा जा सके।

1988 में सी.पी.आई.(एम.एल.) की स्थापना यतेन्द्र कुमार ने की।

नवम्बर 1989 में भू-स्वामियों ने भोजपुर जिले में 12 वामपंथी समर्थको को मार डाला। नवम्बर में ही सी.पी.आई. को पहली चुनावी सफलता मिली जब आरा से पहला नक्सली सदस्य संसद पहुचा। आंदोलन का यह एक नया मोड़ था। आई.पी.एफ. के अन्तर्गत यह चुनाव लड़ा गया था।

1990 में आई.पी.एफ. की पहली अखिल भारतीय रैली दिल्ली में निकली जिसमें लाखों किसानों ने भाग लिया। 1990 में छात्र स्तर पर भी काम किया गया। इलाहबाद में आल इण्डिया स्टूडेन्टस ऐसोसिएशन की स्थापना की गयी। 1993 में ऐसोसिएशन ने इलाहाबाद, वाराणसी और नैनीताल विश्वविद्यालयों के चुनावों में जीत हासिल की। कुछ समय बाद उसका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्र संघ पर भी कब्जा हो गया। 1993 से 1996 तक साम्यवादी संगठनो के बनने और टूटने की कहानी है। इसी दौरान नक्सली आंदोलन दबा रहा।

1999 में नक्सलियों ने हमले तेज कर दिये। लगभग 40 उच्च जाति के लोंगों को मार डाला गया। पी.डी.जी. के तीन बड़े नेता भी मारे गये। 3 नवम्बर को मध्य प्रदेश के ट्रांसपोर्ट मंत्री लिखीराम कारवे को बदले में मार डाला गया।

2000 में बदले की कार्यवाहियां तेज हो गयी। पी.डी.जी. ने तेलगुदेशम पार्टी के सांसद सुखेन्द्र रेड्डी का घर उड़ा दिया। फरवरी में मध्यप्रदेश में पुलिस की एक गाड़ी को उड़ाकर 23 पुलिसकर्मियों को मार डाला। इसी माह आन्ध्र प्रदेश में दस लोंगों को मार डाला गया । पीपुल्स गोरिल्ला सेना (पीएलजीए) का निर्माण पुलिस को मारने के लिए किया गया।

2001 में सी.पी.आई. (एम.एल.) ने ''नक्सलवादी साहस'' को पुर्नजाग्रित करने का आहवान किया। इसी वर्ष दक्षिणी एशिया में नक्सली आंदोलन फैलाने के लिए कोआर्डिनेशनल कमेटी ऑफ माओइस्ट पार्टीज एण्ड ऑरगनाइजेशन ऑफ साउथ एशिया का पहला अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाया गया।

2002 से लेकर जनवरी 2010 का नक्सली इतिहास पूरी तरह रक्त रंजित है। इसका वर्णन पिछले पन्नों में किया जा चुका है।

वर्ष 2004 से वर्तमान में ज़ारी इस चरण में नक्सलियों का 'राष्ट्रीय स्वरूप' उभरा और 'विदेशी संपर्क' बढ़े, जिससे अब नक्सलवाद राष्ट्र की 'सबसे बड़ी आंतरिक चुनौती' बनकर उभरा।

विगत कुछ वर्षों में शहरी नक्सलवाद या अर्बन नक्सलिज़्म शब्द बड़ी तेजी से सामने आया है। शहरी नक्सलवाद से मतलब, उन शहरी आबादी में रहने वाले लोगों से हैं जो प्रत्यक्ष तौर पर तो नक्सलवादी नहीं है, लेकिन वो नक्सलवादी संगठनों के प्रति और उनकी गतिविधियों के प्रति

सहानुभूति रखते हैं। कई बार इन पर नक्सलियों के लिये युवाओं की भर्ती मदद करने का भी आरोप लगता रहा है।

9.6 नक्सली संगठन: पीपुल्स वार ग्रुप

1974 तक बंगाल और बिहार में नक्सली आंदोलन पूरी तरह कुचल दिया गया। आपात काल में हजारों नक्सलियों को जेल में डाल दिया गया, उनको भी जिन पर थोड़ा सा संदेह था, पर वे कसूरवार नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि ज्यों ही आपातकाल समाप्त हुआ नक्सली आदोलन ने फिर करवट ली। 22 अप्रैल 1980 में कोन्डापल्ली सीतारमैया के नेतृत्व में आंध्र प्रदेश में पीपुल्स वार ग्रुप (पी.वी.जी.)का गठन हुआ. बिहार में माओईस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर तथा यूनिटी आर्गनाइजेशन अस्तित्व में आ गये। पहले तो सी.पी.आई. (एम0एल0) लिब्रेशन ने संसदीय व्यवस्था में काम करने का इरादा किया। लेकिन बाद में हथियार बंद संघर्ष में कूदने में हिचकिचाहट नहीं की । इन संगठनों को एक विचारात्मक आधार कोन्डापल्ली ने दिया। उसने लिखा ''.....एक देश जहां लोकतांत्रिक संस्थांए कमजोर और संकुचित बुनियादो पर आधारित हो, जहां छोटी विजयों और आंशिक सुधारों को एक बड़े सैनिक बल से प्राप्त किया जाये और बनायें रखा जाये'', वहां हथियारबंद संघर्ष अनिवार्य है। इस तरह पी.डब्लू.जी. की विचारधारा आज के नक्सलियों की विचारधारा है।

पीपुल्स वार ग्रुप का उदय का कारण था सी.पी.आई. (एम0एल) लिब्रेशन का लोकतांत्रिक चुनावो में भाग लेना। ऐसा लोकतांत्रिक कदम चारू मजूमदार के विचारों के विरूद्ध था। वह चाहता था कि समान्ती सेना के विरूद्ध एक सत्त जन युद्ध हो। राज्य के हमलो का जवाब वैधानिक सुधारवादी नीतियों से नहीं दिया जा सकता ''ऐसा करना शासकीय वर्ग के चमचों'' में बदलना होगा।

पहले कुछ वर्षो तक पी.डब्लू.जी. आंध्र प्रदेश तक सीमित रहा जबकि सी.पी.आई. (एम.एल.) का बिहार पर प्रभाव रहा। 1982 में सी.पी.आई. (एम.एल.) पार्टी युनिटी अस्तित्व में आ गयी और इस तरह एक आंतरिक संघर्ष का खूनी खेल आरंभ हो गया। अगस्त 1998 में पार्टी यूनिटी और पी.डब्लू.जी. ने मिलकर यूनाईटेड पार्टी बना ली और एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसका शीर्षक था राज्य के विरूद्ध हथियार बंद जन-संघर्ष। लेकिन पार्टी की असफलता ने पी.डब्लू.जी. को बढने का और मौका दिया। वह आंध्र प्रदेश से निकलकर बिहार, उडीसा, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ तक फैल गयी। आज जो खूनी खेल चल रहा हैं उसमें पी.डब्लू.जी. का बडा हाथ है।

पीडब्लूजी अपनी विचारधारा का पता चीनी नेता माओ त्से तुंग के संगठित किसान विद्रोह के सिद्धांत से लगाता है। यह संसदीय लोकतंत्र को खारिज करता है और गुरिल्ला युद्ध पर आधारित लंबे समय तक चलने वाले सशस्त्र संघर्ष के माध्यम से राजनीतिक सत्ता पर कब्जा करने में विश्वास

करता है। इस रणनीति में ग्रामीण और दूरदराज के इलाकों में ठिकानों का निर्माण करना और उन्हें पहले गुरिल्ला क्षेत्रों में और फिर मुक्त क्षेत्रों में बदलना, इसके अलावा क्षेत्रवार कब्जा करना और शहरों को घेरना शामिल है। अंतिम उद्देश्य "जनता के युद्ध" के माध्यम से "जनता की सरकार" स्थापित करना है। संक्षेप में, जैसा कि पीडब्लूजी दावा करता है, यह एक नई लोकतांत्रिक क्रांति (एनडीआर) की शुरुआत करना चाहता है।

9.7 माओइस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर

माओइस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर या माओवादी साम्यवादी केन्द्र (एम.सी.सी.) नक्सली आंदोलन का एक दूसरा खोफनाक चहरा है। इसका निर्माण दक्षिण देश के रूप मे 1969 में हुआ जिसका लक्ष्य राज्य के अभिकर्ताओं के विरूद्ध हथियार बंद संघर्ष करना था। 2003 में इसका नाम एम.सी.सी. इण्डिया पडा। एम.सी.सी. माओत्से तुंग की शपथ लेकर काम करती है, जिसका संदेश था गुरिल्ला जन-युद्ध ताकि ‘‘एक शक्तिशाली जन सेना और अर्धजन सेना का निर्माण हो ताकि ग्रामीणीय स्तर पर एक आत्म निर्भर शक्तिशाली और भरोसेमंद आधार क्षेत्र बन सके, जिसके माध्यम से धीरे-धीरे शहरी क्षेत्रों की घेराबंदी की जाये, ग्रामीणीय क्षेत्रों को मुक्त कराकर और अंत में शहरों में कब्जा जमाया जाये और इस तरह निर्णायक रूप से प्रतिक्रियावादियों की राज्य शक्ति को नष्ट कर दिया जाये।’’ एम.सी.सी. और पी.डब्लू.जी. की विचारधारा में कोई विशेष अंतर नहीं है। यदि कोई अंतर हैं तो वह हैं कार्यशैली की तीव्रता का। दोनों एक दूसरे से आगे बढने की कोशिश मे लगे है।

9.8 भारतीय साम्यवादी पार्टी (माओवादी)

2004 की रणनीति से माओवादियों या नक्सलियों के लक्ष्य का पता लगता है। 2004 में देशव्यापी क्रान्तिकारी संगठन की स्थापना के लिए नक्सली आंदोलन ने एक बड़ी छलांग लगाई। इस वर्ष पी.डब्लू.जी. और एम.सी.सी. आई. ने गनपंथी और किशन जी के नेतृत्व में कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (माओवादी) का मिलकर गठन किया। यह संगठनात्मक राजनीति के संघर्ष का नतीजा था। यहां स्वीकार करना होगा कि नक्सली आंदालन का इतिहास सहमति और विभाजन का इतिहास हैं जिसका आधार विचारों में टकराव है। सी.पी.आई. (एम) का मेनीफेस्टो एक समझौते का परिणाम है। इस संगठन का निशाना दो बाते हैं- अनौचित्यपूर्ण कृषि नीतियां और राज्य द्वारा भूमि का पुर्नवितरण और दूसरे वह व्यवस्था जिसे माओवादी अर्ध-उपनिवेशवादी, अर्ध-सामन्ती और महत्वांक्षी नौकर शाही पूंजीवादी व्यवस्था कहते है। सी.पी.आई. (एम.एल.) का रख रखाव बहुत कुछ सीमा तक सुधारवादी था लेकिन लोंगों ने इसे अस्वीकार कर दिया। आम नक्सली को क्रान्तिकारी और हिंसात्मक तरीको से लक्ष्य की प्राप्ति सरल नज़र आती थी।

पी.डब्लू.जी. और एम.सी.सी. के गठजोड़ के बाद सी.पी.आई. (एम) ने एक ऐसे ठोस क्रान्तिकारी क्षेत्र (काम्पैक्ट रैवोल्यूशनरी जोन सी.आर.जैड.) का नक्शा खीचा जो नेपाल से बिहार होता हुआ छत्तीसगढ़ से आंध्र प्रदेश तक जाता है। इसको लाल गलियारा (रेड़ जोन) का नाम दिया गया है। इसका लक्ष्य था भारत को दो आधे-आधे भागों में बांटना और उन क्षेत्रों पर कब्जा कर लेना जो संसाधनो से सम्पन्न हैं, डा. रजत कजूर के अनुसार ''यद्यपि नक्सली गुटों के निशाने, लडाई के तरीके, क्षमतांए और इनका चरित्र समय-समय पर बदल है। लेकिन नेतृत्व की विचारधारा अडिग है।''

9.9 नक्सली विचार धारा

जैसा कि लिखा जा चुका हैं कि पीपुल्स वार ग्रुप (पी.डब्लू.जी.) की विचारधारा नक्सली विचारधारा का आधार है। जिसका स्रोत चारूमजूमदार के लेख है। इन लेखों का संग्रह करके मजूमदार ने हिस्टॉरिक एट डाक्यूमेंटस का नाम दिया जो नक्सली विचारधारा का आधार बनी। पी.डब्लू.जी. इसी विचारधारा के अनुसार काम करती है। यहां हम पी.डब्लू.जी. के एक पार्टी अभिलेख (दस्तावेज) 'पार्ट आफ पीपुल्स वार इन इण्डिया-आवर टास्क' के एक उद्धढ़ को प्रस्तुत करेंगे जो माओवादियों या नक्सलियों का लक्ष्य, उद्देश्य और रणनीति को उजागर करता है। यह दस्तावेज 1992 में जारी किया गया, जिसका उदाहरण इस प्रकार है।

''हमारे दल के प्रोग्रोम ने यह घोषित किया कि भारत एक लम्बा-चौड़ा, अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है। जिसमें लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांव में रहती है। यह बड़े बुजुआई, बड़े भू-स्वामियों से जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है, शासित होता है। साम्राज्यवाद, सामान्तवाद और नौकरशाह-पूंजीवाद के मध्य गठजोड़ एक तरफ और दूसरी ओर जनता का जनसमूह हमारे देश में मौलिक अर्न्तविरोध है। नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति और कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुजुआईयों की जन लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना, हमारे लोंगों को सभी प्रकार के शोषण और प्रतिक्रियावादी शासकीय वर्गों की तानाशाही से मुक्ति दिलाना और हमारे देश में समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना करना, हमारे दल का अंतिम लक्ष्य हैं हथियार बंद कृषक क्रान्ति के आधार पर जन युद्ध एक मात्र रास्ता है। जन लोकतंत्र को प्राप्त करने का अर्थात हमारे देश में नया लोकतंत्र।''

उक्त अध्ययन से जो निष्कर्ष निकलता हैं वह इस प्रकार है:-

1.नक्सलियों के अनुसार भारत एक अर्ध-उपनिवेशवादी और अर्ध-समान्ती देश है।

2.यह बड़े बुर्जुआई और भू-स्वामियों से शासित होता है। जिनका झुकाव साम्राज्यवाद की ओर है।

3.साम्राज्यवाद, सामंतवाद, नौकरशाहों तथा पूंजीपतियों के मध्य गठजोड़ है।

4.दूसरी ओर लोंगों का जन समूह है।

5.नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति के माध्यम से परिवर्तन लाया जा सकता है।

6.लक्ष्य कामगारों, किसानों, मध्य वर्गों और राष्ट्रीय बुर्जआईयों की लोकतांत्रिक तानाशाही की स्थापना करना है।

7. समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।

8.हथियार बंद कृषक क्रान्ति पर आधारित जनयुद्ध (पीपुल्स वार) लक्ष्य की प्राप्ति का साधन है।

9.यही नये लोकतंत्र की अवधारणा है।

9 .10 आठ ऐतिहासिक दस्तावेज

जैसा कि लिखा जा चुका हैंचारूमजूमदार नक्सलियों का सिद्धांतकार था। उसकी विचारधारा उसके द्वारा प्रतिपादित ''ऐतिहासिक आठ दस्वातेजों'' में मिलती है। नक्सली आंदोलन को समझने के लिए इन दस्तावेजों का अध्ययन जरूरी है। इन दस्तावेजों का सार इस प्रकार है:-

1.चारू मजूमदार का मानना था कि मौजूदा परिस्थितियों में सी.पी.आई. (एम) ने मार्क्स लेनिन का रास्ता छोड़कर समझौते और समन्वय का रास्ता अपनाया। मजूमदार ने इसे ''संशोधनवाद'' (रिवीज़निज्म) कहा और आह्वाहन किया कि किसानों का आंदोलन संशोधनवाद के विरूद्ध होना चाहिए। मजूमदार के अनुसार मार्क्सवादी प्रतिक्रियावादियों की पंक्ति में आंकड़े हुए है। इन्होंने वर्ग संघर्ष के स्थान पर सहयोग का रास्ता अपनाया है। यह इनका अर्थवाद है। माओं को उद्धत करते हुए उसने लिखा जो ''जो निष्पक्ष रहते हैं वे अवसरवाद का मार्ग अपनाते है।'' यही संशोधनवादी है।

2.हमने जन लोकतांत्रिक क्रान्ति को अपनाया हैं जिसका उद्देश्य किसानों के हित में भूमि सुधार करना है। इसके लिए हमें सामन्ती वर्गों से जमीन छीननी होगी और उसे भूमिहीन किसानों और गरीबों में बांटना होगा।

3.बिना बलिदान के कोई संघर्ष नहीं हो सकता। 'माओं ने हमको सिखाया हैं कि जहां सघर्ष हैं वहां बलिदान है। आरंभ में प्रतिक्रियावादियों की ताकत ज्यादा होगी। बाद में वे पराजित हो जायेंगे।'

4.नौकरशाही की भूमिका बड़ी गंदी होती है। यदि कुछ वैधानिक सुधार किये भी जाये और नौकरशाही पर क्रियान्वयन को छोड़ दिया जाये तो किसानों को कुछ नहीं मिलेगा। ऐसा लेनिन का विश्वास था।

5.कृषक क्रान्ति लाने से पूर्व राज्य की शान्ति को नष्ट करना होगा। यह कैसे होगा, इसके लिए मजूमदार ने लिखा ''भू-स्वामियों से हथियार छीनने होंगे, पहले उनके घरों को जलाना होगा। अचानक हमला करके सरकारी हथियारों को छीनना होगा। यही पहला हथियारबंद संघर्ष है।

6.वर्ग विश्लेशण जरूरी हैं । बिना वर्ग विश्लेषण के वर्ग संघर्ष नहीं होगा। केवल कमज़ोर किसान-मजदूर क्रान्तिकारी हो सकता है। मध्यवर्ग नहीं हो सकता।

7.हथियार बंद संघर्ष की राजनीति जरूरी है। बन्दूकें छीनना इसका एक भाग है। माओं की संस्कृतिक क्रान्ति का यही लक्ष्य था। मजूमदार मिज़ों और नागा के मुक्ति आंदोलन को उचित मानता है।

8.मजूमदार के अनुसार छात्रों और युवकों को आगे लाना चाहिए। उसके बाद किसान आंदोलन चले। ऐसा बिहार और आन्ध्र प्रदेश में हुआ। ''शोषक वर्ग दमन करेगा और हमें दमन का सामना करना होगा।'' सामना सकारात्मक होना चाहिए। सत्याग्रह नकारात्मक है। ट्रेंड संघ तथा कृषक सभांए समझौता करती है।

9.घृणित नौकरशाही और पुलिस पर हमला जरूरी है। रेलवे स्टेशनों, पुलिस स्टेशनों, सरकारी भवनों को मत जलाओ। ट्रेनों, बसों, ट्रकों को मत जलाओ। इनका कोई अपराध नहीं है।

10.साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिवर्तित करो।

11.आधुनिक संशोधनवाद का जिसका अगुआ रूस हैं विरोध करो। राजनीति शक्ति की प्राप्ति की ओर मत भागो।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है। कि मजूमदार के विचारों का आधार मार्क्सवादी-लैनिनवादी-माओवादी विचारधारा है। यह नौकरशाही, पूंजीपतियों, भू-स्वामियों के शोषक वर्ग को उखाड़ फेकने पर बल देता है। इसके स्थान पर सर्वहारा की तानाशाही की स्थापना करना चाहता है। समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना अंतिम लक्ष्य है।

9 .11 नक्सली आंदोलन के कारण

आदिवासियों तथा दलितों का समग्र विकास न होना, भूमिहीन किसानों की बदहाली, भू-स्वामियों द्वारा शोषण, खनिज सम्पदा पर ठेकेदारों और पूंजीपतियों का नियंत्रण पुलिस का जुल्म नक्सली आंदोलन के मुख्य कारण है।

भारत में आदिवासियों की संख्या लगभग 8 प्रतिशत है। यह चार क्षेत्रों-अरूणाचल प्रदेश, नागालैण्ड, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, पश्चिमी बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, उत्तराखण्ड इत्यादि में केन्द्रित है। यह अधिकतर जंगलो और पहाड़ी इलाकों में रहते है। यह जंगल के उत्पादन या कृषि पर निर्भर है। अधिकांश भूमिहीन है। राजपूत, मराठा तथा दूसरे शक्तिशाली वर्गों ने इन्हें अपने क्षेत्र छोड़ने को मजबूर किया है। इनसे जमीनें छीनी हैं जो इन्हें इधर-उधर भटकने पर मजबूर करते है। आदिवासी पूरी तरह़ ऋण में फंसे रहते है। जिसकी वजह से इन्हें बंधुआ मजदूर बनना पडता है।

यही स्थिति भूमिहीन किसानों की है। वे न केवल निर्धन हैं बल्कि ऋण ग्रस्त है। शक्तिशाली भू-स्वामी उनका शोषण करते हैं और उनको बंधुआ मजदूर बना कर रखते है।

बिहार, झारखण्ड, उडीसा, छत्तीसगढ़ इत्यादि क्षेत्र प्राकृतिक सम्पदा से सम्पन्न है। यहां खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में है। खनिज पदार्थो की खानों पर ठेकेदारों का नियंत्रण हैं जिसका लाभ पूंजीपति या केन्द्रीय सरकार उठाती है। स्थानीय लोंगों को इनका कोई लाभ नहीं मिलता। आक्रोश का यह एक बड़ा कारण है।

पुलिस का अत्याचार जग जाहिर है। पुलिस ठेकेदारों, जमीदारों, ऋणदाताओं और पूंजीपतियों का साथ देती है। भूमिहीन किसानों पर जुल्म ढाती हैं और उनकी महिलाओं का अपमान करती है।

नौकरशाही लापरवाह है। योजनाओं के क्रियान्वयन में ढील है। इस तरह भूस्वामी-ठेकेदार-पुलिस-नौकरशाही का गठजोड़ लोंगों को आंदोलित करता है।

9 .12 नक्सलवाद और आतंकवाद

अक्सर यह सवाल उठता हैं कि अपनी हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण क्या नक्सलियों को आतंकवादियों की श्रेणी में रेखा जा सकता है? नेपाली माओवादियों के बारे में कहा जाता हैंकि वे राजतंत्र के विरूद्ध युद्धरत थे। इसलिए उनको आतंकवादी नहीं कहा जा सकता। नेपाल के माओवादियों के ऊपर बनाई फिल्म ‘‘**फ्लेम्स ऑफ दि स्नो**’’का यही सार है। जहां तक भारतीय माओवादियो या नक्सलियों का सवाल हैं ,उनका मानना है कि वे प्राकृतिक सम्पदा की लूट करने

वालो के खिलाफ लड़ रहे है । उनकी सेना में लगभग 40 प्रतिशत महिलांए है। उनके संघर्ष का आधार विचारात्मक हैं और उनके लक्ष्य को प्राप्त करने का आधार संघर्ष और हिंसा है, जो एक लोकतांत्रिक देश में कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

गुप्त ऐजेंसियों की रिर्पोट के अनुसार एम.सी.सी. और पी.डब्लू.जी. का सम्पर्क एल.टी.टी.आई., नेपाली माओवादियों और पाकिस्तान की आई.एस.आई. से रहा है। यहां से वे हथियार और प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे है। इसलिए संदेह किया जा सकता हैं कि वे आतंकियों से मिले हुए है। उदाहरण के लिए जिस प्रकार से इन्होंने 28 मई, 2010 को ज्ञानेश्वरी एक्सप्रेस को उड़ाया जिसमें 48 यात्री मारे गये, यह सिद्ध करता हैं कि यह निर्दोष लोंगों को भी मारने से नहीं चूकते जो आतंकियों की प्रवृति है। उमाकान्त महंतो जो जनानेश्वरी काण्ड का दोषी था और जिसका माओवादी समर्थित पी.सी.पी.ए. (पीपुल्स कमेटी अगेंस्ट पुलिस एट्रासिटीज) से गहरा सम्बन्ध था, 27 अगस्त 2010 को मिदनापुर की एक मुठभेड़ में मारा गया। इसी संगठन से सम्बन्धीत असित महंतो और बापी महतों हैंजिनके सिर पर एक लाख का इनाम है। इनको आतंकी घोषित किया गया है।

तथाकथित बुद्धिजीवी नक्सली आंदोलन को आतंकवादी मानने के लिए तैयार नहीं है। तेलगू के साहित्यकार श्री.श्री., आर.वी. शास्त्री, खुतुबा राओ, के.वी. रामना रेड्डी, चेराबन्दा, राजू वरावरा राओ, सी. विजयालक्ष्मी इत्यादि ऐसे ही लेखक है। इन्होंने विपलव रचीयता संगम का निर्माण किया है। जिसका अर्थ हैं क्रान्तिकारी लेखकों की सभा (रेवोल्यूशनरी राइटस एसोसिएशन आर0डब्लू0ए0) हैदराबाद के अनेक कलाकार सिरिकुलम संघर्ष से प्रभावित हुए हैं और इसके लिए फिल्में बनाने की ओर अग्रसर है।

9.13 नक्सली आंदोलन का सार

1. नक्सली कौन हैं ?

नक्सलवादी या नक्सली एक शब्द हैं जो उन गुटों को परिभाषित करता हैं जो भूमिहीनो, मजदूरों तथा अन्य जन-जातियों के लिए भू-स्वामियों तथा अन्य के विरूद्ध एक हिंसात्मक संघर्षरत है। नक्सलियों का दावा है कि वे वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए दमन और शोषण के विरूद्ध लड़ाई लड़ रहे है। जब कि लोकतंत्र में विश्वास करने वाले उन्हें आतंकवादी कहते है जो वर्ग संघर्ष के नाम पर लोंगों का दमन कर रहे है और राष्ट्र में असुरक्षा का वातावरण पैदा कर रहे है। जिससे अंततः विकास कि प्रक्रिया भी बाधित हो रही है।

2. कितने नक्सली गुट हैं?

विभिन्न नामों के अन्तर्गत बहुत से गुट सक्रिय है। भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी लेनिनवादी) एक ऐसा राजनीतिक संगठन हैं जो नक्सलियों की विचारधारा का प्रचार करता है। इण्डिन पीपुल्स फ्रन्ट ग्रुप अहम भूमिका अदा करता है। पीपुल्स वार और माओइस्ट कम्यूनिस्ट सेंटर ऐसे संगठन हैं जो हिंसा में लिप्त है।

3. वे कहां-कहां सक्रिय हैं?

भारत का वह मध्य भू-भाग जो सब से कम विकसित है, नक्सलियों की गतिविधियों का केन्द्र है। यहां वे ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों,विशेषरूप से लम्बे जंगलो में सक्रिय है। उत्तर से दक्षिण तक यह झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, पूर्वी महाराष्ट्र तथा तेलंगाना में और (उत्तर पश्चिम में) आंध्र प्रदेश और पश्चिमी उडीसा तक फैले हुए है। उत्तर प्रदेश के उन क्षेत्रों में जो नेपाल से मिले है, यह सक्रिय नजर आते है। पश्चिमी बंगाल और बिहार में माओवादियों के नाम से जाने जाते है। पीपुल्स वार ग्रुप विशेष रूप से आन्ध्र प्रदेश, पश्चिमी उडीसा और पूर्वी महाराष्ट्र में सक्रिय हैं ,जबकि माओइस्ट कम्यूनिस्ट सेन्टर बिहार, झारखण्ड और उत्तरी छत्तीसगढ़ में सक्रिय है।

4. वे किसका प्रतिनिधत्व करते है?

नक्सलियों का दावा हैं कि वे भारत के सबसे कुचले हुए लोंगों का प्रतिनिधित्व करते हैं, विशेषकर वह लोग जिन तक भारत का विकास नहीं पहुचा हैंऔर चुनाव प्रक्रिया में नजरअंदाज कर दिये गये है। आमतौर पर यह आदिवासी, दलित और सब से निर्धन लोग है, जो मात्र कोड़ियों के लिए भूमिहीन मजूदूरों की हैसियत से काम करते है।

5. नक्सली किसे निशाना बनाते है?

विचारात्मक दृष्टि से नक्सलियों का दावा हैं कि वे उस भारत का विरोध करते हैं जिस रूप में वह आज अस्तित्व में है। उनका विश्वास हैं कि भारतीयों को भूख और वंचना से मुक्ति पाना हैं और यह कि धनी वर्ग-भू-स्वामी, उद्योगपति, व्यापारी इत्यादि उत्पादन के साधन पर नियंत्रण रखते है। उनका अंतिम लक्ष्य हैं वर्तमान व्यवस्था को उखाड़ फेंकना, परिणाम स्वरूप राजनीतिज्ञों, पुलिस अधिकारियों, जंगल के ठेकेदारों इत्यादि को वे निशाना बनाते है।

गांवों में नक्सली भू-स्वामियों को निशाना बनाते है । विशेषरूप से उन से पैसा उघाते है। क्योंकि वे आदिवासियो और भूमि-हीनों के लिए लडते है, अतः अक्सर वे इनसे टैक्स वसूलते हैं। यह सरकार का शोषण कम उनका ज्यादा है।

6. आंदोलन की विचारधारा का आधार क्या हैं?

नक्सली संघर्ष चीन के माओत्से तुंग की विचारधारा पर आधारित है, जिसका उद्देश्य भारतीय क्रान्ति को जन्म देना है। हिंसा इसका आधार है। आंध्र प्रदेश में यह विचारधारा बहुत मजबूत है।

7. क्या कभी यह आंदोलन लोकप्रिय हुआ?

1960 और 1970 के दशक में नक्सलवाद लोकप्रिय था। विशेषरूप से इसमें कई बड़े-बड़े कालेजों के मेधावी छात्रों ने भी दिलचस्पी दिखाना शुरू की थी। वे आदिवासियों और भूमिहीनों के अधिकारों की वकालत करते थे। बहुत से बड़े बुद्धिजीविओं का भी इसको समर्थन मिला। सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहानुभूति इस आंदोलन के साथ थी। विनायक सेन ज्वलंत उदाहरण हैं जिनको उम्र कैद की सजा सुनाई गयी है। यह तथ्य कि हजारों पुरूषों और महिलाओं ने इस आंदोलन में शिरकत की है, यह सिद्ध करता हैं कि यह जीवित है।

8. क्या नक्सलियों का विरोध होता है?

हां, आंदोलन के पूरे दौर में नक्सलियों को विरोध का समना करना पड़ा है, पडना भी चाहिए । उदाहरण के लिए जून 1960 की दशक में पश्चिमी बंगाल में यह आंदोलन आरम्भ हुआ तो सी.पी.आई. (एम) ने कांग्रेस की सहायता से माओवादियों पर गहरे आघात किये। लगभग तब इसे कुचल दिया गया। ग्रामीण स्तर पर नक्सलियों की आतंकी हरकतो को जवाब देने के लिए स्थानीय सेनांए लामबंद हुई। जिनको भू-स्वामियों का समर्थन प्राप्त था। इनमें सबसे बदनाम रणवीर सेना बिहार और झारखंड में है। यह भूमिहर भू-स्वामियों द्वारा बनाई गयी थी। इन सेनाओं ने सैकड़ों आदिवासियों, दलितों और भूमिहीन मजदूरों को मार डाला।

9. इनकी क्या आलोचना होती है ?

इनकी आलोचना यह हैं कि बावजूद अपनी विचारधारा के, वे मात्र एक दूसरे प्रकार के आतंकवादी बन गये है। यह मध्यवर्गीय भू-स्वामियों से धन वसूली करते हैं और सब से बुरा पहलू यह हैं कि उन आदिवासियों और ग्रामीणों के जीवन को प्रताणित और नियंत्रित करते हैं जिनका प्रतिनिधित्व करने का यह दावा करते है। यह महिलाओं का शारीरिक शोषण करते हैं।

10. आंदोलन की वर्तमान स्थिति क्या है?

2008 से लेकर आजतक (फरवरी 2011) नक्सलियों की हिंसात्मक गतिविधियों में बहुत बढोत्तरी हुई है। 2010 में इन्होंने लगभग 200 लोंगों की हत्या की है जिनमें पुलिसकर्मी भी शामिल हैं । रेलवे ट्रैक उडाये है, रेलवे स्टेशन जलाये है, रेलों पर हमला किय हैं जिनमें जनानेश्वरी एक्सप्रेस को उड़ाकर

45 लोंगों का मार डालना शामिल है। कुल मिलाकर स्थिति गंभीर हैं और पुलिस तथा अर्धसैनिक बल इनके खिलाफ लामबंद है। कितने नक्सली मारे जाते हैं यह स्पष्ट नहीं है।

11. समाधान पहल-

ऑपरेशन 'समाधान' भारत में नक्सली समस्या को हल करने के लिये गृह मंत्रालय द्वारा शुरू की गई एक पहल है। समाधान से तात्पर्य है-

S-Smart leadership (कुशल नेतृत्व)

A-Aggressive strategy (आक्रामक रणनीति)

M-Motivation and training (अभिप्रेरणा एवं प्रशिक्षण)

A-Actionable intelligence (अभियोज्य गुप्तचर व्यवस्था)

D-Dashbord based key performance indicators and key result area (कार्ययोजना आधारित प्रदर्शन सूचकांक एवं परिणामोन्मुखी क्षेत्र)

H-Harnessing technology (कारगर प्रौद्यौगिकी)
A-Action plan for each threat (प्रत्येक रणनीति की कार्ययोजना)
N-No access to financing (नक्सलियों के वित्त-पोषण को विफल करने की रणनीति)

9 .14 शब्दावली

1. मिलीटेंट: लड़ाकू जो आंदोलन के लिए हिंसा का रास्ता अपनांए

2. रीऐक्शनरी: प्रतिक्रियावादी जो भूमिस्वामी, बुर्जाई, सामन्ती पूंजीवादी है। जो आंदोलन कुचलना चाहते है।

3. रिवीशनिस्ट: संशोधनवादी जो क्रान्तियों को अपनी दृष्टि से परिभाषित करते है, समझोते करते हैं।

4. बुर्जुआ: वह वर्ग जो सामन्ती या पूंजीपति है।

9 .15 सारांश

नक्सली संगठनों का लक्ष्य नवीन लोकतांत्रिक क्रान्ति लाना बताया गया है। हथियार बंद संघर्ष इस लक्ष्य का समाधान है। लेकिन आंदोलन की विवेचना से पता चलता हैं कि इन संगठनों का

विशेषरूप से सी.पी.आई. (एम) का बल हिंसा पर अधिक हैं और लक्ष्य प्राप्ति पर कम। यदि वे सत्ता में आते हैं तो इनके सुधार क्या होंगे, यह स्पष्ट नहीं है। क्या इनका राज्य समाज, नौकरशाही विहीन, पुलिस विहीन तथा बुर्जुआ विहीन होगा, इस प्रश्न का उत्तर इनके पास नहीं है। सोवियत संघ टूटने तथा खुले बाजार की अवधारणा ने इनको द्वन्द की स्थिति में ला दिया है।

नक्सली आंदोलन अराजकता की ओर है। आदिवासियों का शोषण, उनसे कर वसूली, जबरन भर्ती, महिलाओं का शारीरिक शोषण नक्सलियों की प्रतिदिन की गतिविधियां है। रेलों पर, बसों पर, रेलवे स्टेशनों और सरकारी दफतरों पर हमला करना, आगजनी करना और आम निर्दोष लोंगों का मारना मजूमदार की विचारधारा के विरूद्ध है। लेकिन यह सब कुछ हो रहा है।

सरकारी स्तर पर नक्सलवाद से निपटने के लिए दो रास्ते चुने गये है-हिंसा का प्रतिरोध पुलिस बल से और आदिवासी पिछड़े क्षेत्रो का विकास। लेकिन नक्सल हिंसा से प्रभावित राज्यों के मध्य इस समस्या से निपटने में एकरूपता नहीं है। इसलिए शासकीय कदम प्रभावशाली नहीं है। दूसरे अन्य राजनीतिक दलों ने इस आंदोलन के माध्यम से अपने हित साधे है, जो नक्सलवाद को जन्म देते है।

9.16 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भारतीय शासन एवं राजनीति - डॉ रूपा मंगलानी

भारतीय सरकार एवं राजनीति - त्रिवेदी एवं राय

भारतीय शासन एवं राजनीति - महेन्द्र प्रताप सिंह

9.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

भारतीय संविधान - ब्रज किशोर शर्मा

भारतीय संविधान - दुर्गादास बसु

9.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. नक्सली आंदोलन वामपंथी राजनीति का परिणाम है, स्पष्ट कीजिए।

2. नक्सलवाद से आप क्या समझते हैं? नक्सलवाद के समाधान में आने वाली चुनौतियों का उल्लेख करते हुए, सरकार के द्वारा किये जा रहे प्रयासों का मूल्यांकन कीजिये।